त्रिविधा

(जीवनी, एकांकी और लघु उपन्यास)

कक्षा ८ के लिए हिन्दी पूरक पाठ्यपुस्तक

संपादक

निरंजनकुमार सिंह, शशिकुमार शर्मा
रामजन्म शर्मा, अनिरुद्ध राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
National Council of Educational Research and Training

प्रथम संस्करण

जुलाई १९८० आषाढ़ १९०२

पुनर्मुद्रण

मई १९८१ . वैशाख १९०३
मार्च १९८३ . चैत्र १९०५
जनवरी १९८४ पौष १९०५
दिसंबर १९८४ · पौष १९०६
दिसबर १९८५ · पौष १९०७
जनवरी १९८७ : पौष १९०८
मार्च १९८८ : फाल्गुन १९०९
मार्च १९८९ : चैत्र १९११

P.D. 30T – RP

मूल्य : रु० 4.15

प्रकाशन विभाग में सचिव राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली ११००१६ द्वारा प्रकाशित तथा प्रिंट एंड फोटो सेटर्स, बी-६२/८, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया, फेस २, नई दिल्ली ११००२८ द्वारा फोटो कम्पोज होकर जे. के. आफसैट प्रिन्टर्स दिल्ली ११०००६ द्वारा मुद्रित।

आमुख

नवीन शिक्षा योजना की महत्त्वपूर्ण विशेषता उसकी बाह्य संरचना या गठन नही है, अपितु वह प्रयोजन एवं दृष्टिकोण है जो शिक्षा का संबंध राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ने पर बल देता है। इसी दृष्टि से परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी स्तर के विभिन्न शैक्षणिक विषयों के लिए पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया गया है। इनके निर्माण मे निम्नांकित सिद्धांतों का विशेष ध्यान रखा गया है :

१. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओ का समावेश जिनसे बालकों मे राष्ट्रीय लक्ष्यो, जैसे जनतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

२. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री, भारतीय जीवन-परिस्थितियों, उद्योग, कृषि, समाजसेवा आदि तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हो और उनमे वांछित भावी विकास की दिशा भी परिलक्षित हो।

३. पाठ्यपुस्तके बालकों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ अभिवृत्ति-विकास की दृष्टि से प्रेरणादायी सिद्ध हों, उनके द्वारा बालकों में स्वयं शिक्षा एवं अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जागृत हो और वे निर्धारित पाठ्यविषय तक ही सीमित न रहकर विशद एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अन्य विषयों की भाँति हिंदी (मातृभाषा) भाषा एवं साहित्य के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण के लिए भी योजना तैयार की गई और इस कार्य को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों एवं अधिकारी विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया गया। पाठ्यपुस्तक प्रणयन की इसी श्रृंखला में

कक्षा ८ के लिए यह 'त्रिविधा' (जीवनी, एकाकी और लघु उपन्यास) पूरक पाठ्यपुस्तक लिखी गई है। मैं इन सभी विद्वानों के प्रति उनके अमूल्य सहयोग के लिए हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के संपादन के लिए सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के सहयोगियों——प्रोफेसर अनिल विद्यालंकार, श्री निरंजनकुमार सिंह, श्री नागकुमार शर्मा, डा० रामजन्म शर्मा, डा० अनिरुद्ध राय के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं उन लेखकों के प्रति विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस पाठ्यपुस्तक के लिए पाठ्यसामग्री तैयार की है और अपनी रचनाओं को पुस्तक में प्रकाशित करने के लिए अनुमति प्रदान की है।

पुस्तक की पाडुलिपि को अंतिम रूप प्रदान करने के लिए विभाग द्वारा आयोजित कार्य-गोष्ठियों में भाग लेने वाले प्रतिभागियों के प्रति भी उनके अमूल्य योगदान के लिए आभार प्रकट करता हूँ।

आशा है बालकों की भाषिक एवं साहित्यिक योग्यताओं की अभिवृद्धि में यह पुस्तक विशेष उपादेय सिद्ध होगी।

पुस्तक में समाविष्ट पाठ्यसामग्री के सुधार एवं परिष्कार की दृष्टि से सुविज्ञ जनों द्वारा भेजे गए सुझावों एवं परामर्शों का हम सदा स्वागत करेंगे।

शिव कुमार मित्र

निदेशक

नई दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

संपादकीय

उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्धारण एवं तदनुरूप पाठ्यपुस्तकों की रचना राष्ट्रीय महत्त्व का कार्य है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना के क्रियान्वयन एवं शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह मूल उपादान है। इस महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में विद्यालयी शिक्षा के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यपुस्तकों के प्रणयन का कार्य होता रहा है। पर यह कार्य एक सतत विकासशील प्रक्रिया है। बदलती हुई राष्ट्रीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, नूतन जीवन-मूल्यों तथा वांछित विकास की दिशाओं के अनुरूप, इनमें संशोधन और परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। अत. नवीन राष्ट्रीय शैक्षिक योजना को सम्यक् रूप से क्रियान्वित करने के लिए परिषद् ने नए सिरे से पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक प्रणयन का कार्य हाथ में लिया और इसके लिए हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विशिष्ट विद्वानों, अनुभवी शिक्षकों तथा प्रशिक्षण विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त किया गया।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत आठवीं कक्षा के लिए यह पूरक पाठ्यपुस्तक—'त्रिविधा' (जीवनी, एकांकी, लघु उपन्यास) आपके सम्मुख प्रस्तुत है। इस पुस्तक की कतिपय विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

प्रस्तुत पुस्तक में तीन साहित्यिक विधाओं का समावेश किया गया है—जीवनी, एकांकी, लघु उपन्यास। बालकों के लिए कहानी के बाद सबसे सरल एवं रोचक साहित्यिक विधाएँ यही हैं, जिन्हें वे अपने आप पढ़कर साहित्य का आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

जीवनी के अंतर्गत राष्ट्रीय महापुरुषों का संक्षिप्त जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है और इस बात का ध्यान रखा गया है कि उनके जीवन की वही घटनाएँ दी जाएँ जो बालकों के चरित्र-निर्माण के लिए प्रेरणादायी हों। भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को सफल बनाने वाले तथा स्वतंत्र भारत की एक सुदृढ़ प्रजातांत्रिक नींव डालने वाले इन महापुरुषों का आधुनिक भारत के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

कुल नौ महापुरुषों की जीवनियाँ कालक्रमानुसार दी गई है। इनके माध्यम से राष्ट्रीय संघर्ष में विविध विचारधाराओं का भी प्रतिनिधित्व हो जाए, इस बात का भी ध्यान रखा गया है। इन जीवनियों के पढ़ने से उन विचारधाराओं का परिचय स्वत: मिल जाएगा।

पुस्तक की पृष्ठ संख्या सीमित रहने के कारण, चाहते हुए भी हम अनेक राष्ट्रीय महापुरुषों को स्थान नहीं दे सके, किन्तु आशा है बालक इन जीवनवृत्तों के अध्ययन से अनुप्राणित होकर उन महापुरुषों की जीवनियां भी विविध स्रोतों से पढ़ेंगे और प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

जीवनवृत्तों के बाद 'दो मित्र' एकांकी रखा गया है। यह बालकों में अपने कर्तव्य के प्रति जागरूकता एवं निष्ठा उत्पन्न करने वाला एकांकी है। कथानक का विकास इस प्रकार किया गया है कि अंत तक कौतूहल बना रहता है। एक ओर मित्रता है, दूसरी ओर अपना सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्य और उत्तरदायित्व। इन दोनों का द्वन्द्व उपस्थित होने पर हमें किस प्रकार अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना है, यह नैतिक आधार इस एकांकी का केन्द्रीय भाव है। बालक सरलता से इस एकांकी का अभिनय कर सकते हैं। हमें विश्वास है कि सरल व सुबोध भाषा और रोचक शैली में लिखा गया यह एकांकी निस्संदेह ही बालकों के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगा।

पुस्तक का तीसरा खंड है --लघु उपन्यास 'एक था छोटा सिपाही'। इसमें एक बालक के मित्र-प्रेम, साहस, त्याग, शौर्य एवं देशभक्ति का परिचय सरल, सजीव एवं प्रवाहपूर्ण भाषा और रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है। विषम से विषम परिस्थितियों में भी भय रहित होकर अपने कर्तव्य का पालन किस प्रकार किया जा सकता है, इसका चित्रण इस उपन्यास में बड़े ही मनोरम ढंग से किया गया है। पर्वतीय प्रदेश के प्राकृतिक परिवेश के चित्रण कथानक एवं चरित्र के विकास में सहायक होने के साथ-साथ उसे गरिमापूर्ण एवं स्पंदनशील भी बना देते हैं।

इस पुस्तक के प्रणयन में हमें अनेक कृतिकारों, विषय-विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं भाषाविदों का सहयोग प्राप्त हुआ है। हम उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। उन कृतिकारों के प्रति हम विशेषरूप से कृतज्ञ है, जिन्होंने पुस्तक के लिए पाठों की रचना की है।

आशा है, प्रस्तुत पुस्तक बालकों की भाषिक एवं साहित्यिक योग्यता की वृद्धि के साथ-साथ उनमें स्वस्थ नैतिक अभिवृत्तियों के विकास में उपादेय सिद्ध होगी।

— संपादक

कृतज्ञता-ज्ञापन

'त्रिविधा' में संकलित रचनाओं के प्रकाशन की अनुमति देने के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित व्यक्तियों और संस्था के प्रति अपना आभार प्रकट करती है।

'महात्मा गांधी' और 'श्रीमती सरोजिनी नायडू' के लिए श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय,' 'नेताजी सुभाषचंद्र बोस' के लिए श्री सी० एल० मिश्र, 'सरदार भगतसिंह' के लिए श्री श्यामनारायण, 'दो मित्र' के लिए श्री सत्येन्द्र शरत्, 'एक था छोटा सिपाही' के लिए लेखिका विमला शर्मा एवं शकुन प्रकाशन, दिल्ली।

पाठ-सूची

(क) जीवनी

(ख) एकांकी

(ग) लघु उपन्यास

१.

महात्मा गांधी

मोहनदास करमचंद गांधी। उन्हें सारा संसार 'महात्मा गांधी' के नाम से जानता है। भारतवासी श्रद्धा से उन्हें 'राष्ट्रपिता' और प्यार से 'बापू' कहते हैं। वे २ अक्तूबर, १८६९ ई० को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान में पैदा हुए थे। परिवार ने उन्हें बैरिस्टरी पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेजा, डिग्री लेकर आए, कुछ दिन भारत में और कुछ दिन दक्षिण अफ्रीका में वकालत की। पर वे वकालत करके धन कमाने और आराम की जिन्दगी बिताने के लिए पैदा नहीं हुए थे। उन्हें तो मनुष्य जाति को नया रास्ता दिखाना था, भारतीय समाज का सुधार करना था और हमारे स्वतंत्रता-संग्राम का सफल संचालन करना था। दक्षिण अफ्रीका में भी वकालत करते समय वे वहाँ बसे भारतीयों को अंग्रेज़ों के अत्याचारों से मुक्त कराने के लिए संघर्ष में लगे रहे।

अंग्रेज़ों की पराधीनता में भारत माँ जकड़ी हुई थी। अंग्रेज़ यहाँ की जनता पर भीषण अत्याचार कर रहे थे। हमारे देश के आर्थिक शोषण की भी सीमा न थी। विदेशी दासता के कारण होने वाले अपमान का अनुभव गांधीजी को भारत में ही नहीं, इंग्लैंड तक में हो चुका था। अतः दक्षिण अफ्रीका के संग्राम में सफल होने पर वे भारत लौट आए और इस देश के स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े। उन्होंने भारत के स्वतंत्रता-संघर्ष का १९१६ से लेकर १९४७ तक सफल नेतृत्व किया।

गांधीजी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। वे सत्य को ही ईश्वर मानते थे और उनका विश्वास था कि सत्य को अहिंसा के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उनकी अहिंसा दुर्बल व्यक्ति की अहिंसा नहीं थी। वे अन्याय और अत्याचार के सामने कभी झुके नहीं। उन्होंने विदेशी सत्ता का डटकर सामना किया, लेकिन कभी भी हिंसा और असत्य का सहारा नहीं लिया। वे किसी भी अन्याय का विरोध शस्त्र से नहीं, अपितु



मोहनदास करमचंद गांधी

अहिंसात्मक सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन के द्वारा ही उचित समझते थे। वे साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल देते थे। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में भी उन्होंने सत्य और अहिंसा के नैतिक साधनों का ही प्रयोग किया। जहाँ भी अन्याय होता, बापू अहिंसक असहयोग के द्वारा उसका विरोध करते; चाहे वह आंदोलन बिहार में नील की खेती कराने वाले गोरों के विरुद्ध हो, या अंग्रेजों की छत्रछाया में चलनेवाली किसी देशी रियासत में अत्याचार के विरुद्ध। शीघ्र ही वे हमारे स्वतंत्रता-आंदोलन के प्रमुख नेता बन गए। उनके नेतृत्व एवं पथ-प्रदर्शन में सारा देश आगे बढ़ा। सविनय अवज्ञा और रचनात्मक कार्यक्रम पर उन्होंने जोर दिया, लोगों को स्वदेशी का व्रत लेने की प्रेरणा दी और अंत में १९४२ में 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का नारा लगाकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि जिन अंग्रेजों के साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होना था, उन्हीं अंग्रेजों को १९४७ में भारत छोड़कर जाने को बाध्य होना पड़ा।

गांधीजी सब मनुष्यों को समान मानते थे। धर्म, संप्रदाय, जाति, रंग आदि के आधार पर होने वाले भेदभाव को वे मानवता का कलंक समझते थे। व्यक्ति की धन-संपत्ति को भी वे महत्त्व नहीं देते थे। समाज के कुछ ही लोगों के हाथों में धन का संचय शोषण को जन्म देता है। इसलिए उनका कहना था कि जिनके पास आवश्यकता से अधिक संपत्ति है, उसे वे समाज की अमानत समझकर उन लोगों के हित के लिए लगाएँ जो निर्धन एवं अभावग्रस्त हैं।

देश स्वतंत्र हुआ, पर गांधीजी ने कोई पद नहीं लिया। वे तो देश को आज़ाद कराने के लिए ही राजनीति में आए थे। उनका मुख्य ध्येय भारतीय समाज को उसकी कुरीतियों और अंधविश्वासों से छुटकारा दिलाना था। छुआछूत के पाप को समाप्त करने, साम्प्रदायिक सद्भावना कायम करने, महिलाओं को बराबरी का स्थान देने, अपने हाथ से काम करने और शारीरिक श्रम को महत्त्व प्रदान करने और लोगों को अपने भेद-भाव शांतिमय तरीके से दूर करने का जो रास्ता गांधीजी ने दिखाया, इसमें संदेह नहीं कि उसपर चलकर ही मनुष्य जाति सुखपूर्वक आगे बढ़ सकती है।

गांधीजी की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने राजनैतिक संघर्ष में भी सत्य, अहिंसा और प्रेम का ही संबल लिया। उनका कहना था कि इनके द्वारा शत्रु का भी हृदय जीता जा सकता है। अपने इन मानवीय गुणों के कारण ही वे विश्वबन्धु बापू

कहलाए।

आधुनिक युग को मानवता की नई दिशा दिखाने वाले इस महापुरुष को, भारत में रहनेवाले सब नागरिकों के बीच एकता की भावना बढ़ाने के प्रयत्न में ३० जनवरी, १९४८ को नई दिल्ली में अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी।

बापू के निधन पर व्याकुल होकर नेहरू जी ने कहा था :

"हमारी ज़िन्दगी में जो ज्योति थी, वह बुझ गई और अब चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा है।···हमारे नेता जिन्हें हम बापू कहते थे और जो हमारे राष्ट्रपिता थे, अब नहीं रहे। हम उन्हें उस रूप में नहीं देख सकेंगे, जिस रूप में इतने वर्षों से देखने के आदी रहे हैं। अब सलाह-मशविरे के लिए उनके पास जाने की बात खत्म हो गई। अब धीरज और ढाड़स बँधाने के लिए वे नहीं मिलेंगे। यह चोट भयानक है। यह चोट मुझे ही नहीं, इस देश के करोड़ों लोगों को लगी है। मैंने कहा प्रकाश चला गया है। पर यह बात मैंने गलत कह दी, क्योंकि जिस ज्योति ने इस देश को जगाया, वह मामूली ज्योति नहीं थी। जिस ज्योति ने इस देश को इन तमाम वर्षों में उजाला दिया, वह आगे भी वर्षों तक उजाला देती रहेगी।"

बापू के जीवन से कुछ प्रेरक प्रसंग नीचे लिखे जा रहे हैं :

बकरे की बलि क्यों ?

एक दिन देवी को भोग चढ़ाने के लिए बिहार के चंपारन जिले के एक गाँव के लोगों का जुलूस देवी के मंदिर की ओर जा रहा था। गांधीजी उस दिन उसी गाँव में ठहरे हुए थे। जुलूस के लोग बहुत शोर-गुल मचा रहे थे। इसलिए सुननेवालों को दूर से ही पता चल जाता था कि जुलूस आ रहा है। जुलूस जब गांधीजी के निवास के निकट से होकर गुजरा तब उनका ध्यान उनकी तरफ गया। पास बैठे हुए एक साथी कार्यकर्ता से उन्होंने पूछा, "लोगों ने यह जुलूस क्यों निकाला है ? वे इतना शोर-गुल क्यों मचा रहे हैं ?"

जुलूस के बारे में उन कार्यकर्ताओं को भी कुछ मालूम नहीं था। इसलिए वे ऐसा उत्तर नहीं दे सके जिससे गांधी जी को संतोष हो। उत्सुकता से गांधीजी बाहर निकले और सीधे जुलूस के पास पहुँचे। जुलूस के आगे एक सुंदर हट्टा-कट्टा बकरा

चल रहा था। उसके गले में फूलों की मालाएँ लटक रही थीं। माथे पर टीका लगा हुआ था। वह देवी का भोग था। कुछ ही समय में उसके खून से देवी का खप्पर भरा जाने वाला था। इसलिए लोग भोग चढ़ाने के लिए बड़ी धूम-धाम से उसे देवी के स्थान पर ले जा रहे थे। यह सब देखकर लोगों के अंधविश्वास का चित्र गांधीजी के सामने खड़ा हो गया। उनका दिल करुणा और दया से भर उठा। जुलूस तो शोर मचाता हुआ आगे बढ़ता ही जा रहा था। थोड़ी देर के लिए अपने काम का विचार छोड़कर गांधीजी भी जुलूस के साथ हो लिए और उस बकरे के साथ-साथ चलने लगे। लोग सब अपनी ही धुन में मस्त थे। इसलिए किसी का भी ध्यान गांधीजी की ओर नहीं गया।

जुलूस देवी के स्थान के पास आ पहुँचा। बकरे के बलिदान की विधि शुरू हो, उसके पहले ही गांधीजी लोगों के सामने खड़े हो गए। कुछ ग्रामवासी चंपारन के आंदोलन के नेता के रूप में गांधीजी को पहचानते थे। उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे आपस में बात करने लगे, "अरे, गांधीजी हमारे दल में कहाँ से आ गए! ये हमारे सामने खड़े पुरुष गांधीजी ही हैं। निलहे गोरों के अत्याचारों से हमें बचानेवाले, हमारे उद्धार-कर्ता!" सब लोग जब बिल्कुल शांत हो गए, तब गांधीजी ने उनसे पूछा, 'इस बकरे को आप सब यहाँ क्यों लाए हैं?'

लोग : "देवी का भोग चढ़ाने के लिए।"

गांधीजी : "देवी को बकरे का भोग आप क्यों चढ़ाते है?"

लोग : "देवी को प्रसन्न करने के लिए।"

गांधीजी : "बकरे से मनुष्य श्रेष्ठ है न?"

लोग : "जी हाँ।"

गांधीजी : "तब यदि मनुष्य का भोग चढ़ाएँ तो देवी ज्यादा प्रसन्न नहीं होगी?"

गांधीजी के इस प्रश्न से लोग गहरे विचार में पड़ गए। कोई कुछ बोला नहीं। इस पर गांधीजी ने कहा, "यहाँ कोई ऐसा मनुष्य है जो देवी को अपना भोग चढ़ाने को तैयार हो? आप में से कोई इसके लिए तैयार न हो तो मैं अपना भोग चढ़ाने को तैयार हूँ। लेकिन बकरे के भोग से जो चीज़ अधिक प्रिय हो, उसी का भोग हम

चढ़ाएँ।"

लोग एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। गांधीजी को क्या उत्तर दिया जाए, यह किसी की समझ में नहीं आया। बकरे की बलि दिए बिना ही लोग चुपचाप लौट गए।

चालीस करोड़ कुरते कहाँ से ?

गांधीजी को बच्चों के साथ हँसने-खेलने में बड़ा आनंद आता था। एक बार वे छोटे बच्चों के एक विद्यालय में गए। उन्होंने बच्चों से विनोद करना आरंभ किया। दूर बैठा एक छोटा विद्यार्थी बीच में कुछ बोल उठा। इसपर शिक्षक ने उसे घूर कर देखा, तो बच्चा सहमकर चुप हो गया। गांधीजी यह सब देख रहे थे। वे उठे और उस बालक के पास जाकर खड़े हो गए। बोले, "बेटा तुम मुझे बुला रहे थे न ? बोलो क्या कहना है ? घबराना मत।"

बालक—"आप कुरता क्यों नही पहनते ? मै अपनी माँ से कहूँगा कि आपके लिए एक कुरता सी दे। आप मेरी माँ का सिया हुआ कुरता पहनेंगे ?"

गांधीजी—"जरूर पहनूँगा, लेकिन मेरी एक शर्त है। मैं अकेला नहीं हूँ।"

बालक—"तो आप कितने आदमी हैं ? माँ से मैं दो कुरते सीने को कहूँगा।"

गांधीजी—"मेरे तो ४० करोड़ भाई-बंद है। उन सबके तन कुरते से ढकें, तभी मैं कुरता पहन सकता हूँ। तुम्हारी माँ ४० करोड़ कुरते सी देगी ?

बालक के मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। वह सोचने लगा, इतने कुरते माँ कहाँ से देगी ? गांधीजी ने उसके मनोभावों को समझ लिया, प्यार से बालक की पीठ थपथपाई और हँसते-हँसते कक्षा से बाहर आ गए।

मैं तो एक सेवक हूँ

सन् १९४७ ई० में गांधीजी हाथ-पैरों को ठिठुरा देने वाली सर्दी में नोआखाली की पैदल यात्रा कर रहे थे। यह यात्रा उन्होंने सांप्रदायिक सद्भावना और हिन्दू-मुसलमानों के बीच प्रेम-भाव स्थापित करने के लिए की थी। मनु गांधी भी उनके साथ थीं। एक बार चलते-चलते वे एक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक परिवार में नौ-दस वर्ष की एक लड़की

सख्त बीमार थी। उसे मोतीझारा निकला था। साथ में निमोनिया भी हो गया था। बेचारी बहुत कमज़ोर हो गई थी। गांधीजी उसे देखने गए। लड़की के पास बैठी स्त्रियाँ परदा करके अंदर चली गईं।

अब बीमार लड़की बेचारी अकेली पड़ गई। झोंपड़ी के बाहरी भाग में उसे रखा गया था। गाँवों में बीमार चाहे जैसी गंदी जगह में मैले-कुचले कपड़ों और गुदड़ों में लिपटे रहते थे। वही हालत इस लड़की की भी थी। मनु गांधी घर के भीतर स्त्रियों को समझाने गई कि तुम्हारे आँगन में एक महान् संत पुरुष पधारे हैं, तुम बाहर आकर उनके दर्शन करो। लेकिन उनकी दृष्टि मे गांधीजी महान् पुरुष नहीं, बल्कि उनके दुश्मन थे। बापू के लिए उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था।

स्त्रियों को समझाने की कोशिश करके जब मनु गांधी बाहर आई तो क्या देखती हैं कि बापू ने लड़की के बिस्तर की मैली चादर हटाकर उस पर अपनी ओढ़ी हुई साफ़ चादर बिछा दी है। पानी से उसका मुँह धो दिया है। अपनी शाल लड़की को ओढ़ा दी है और कड़ाके की सर्दी में खुले बदन खड़े-खड़े बीमार के सिर पर प्रेम से हाथ फेर रहे हैं।

दोपहर में दो-तीन बार उस लड़की को शहद और पानी पिलाने के लिए बापू ने मनु को भेजा। लड़की के पेट और सिर पर मिट्टी की पट्टी रखवाई। रात को उस बच्ची का बुखार बिल्कुल उतर गया। घर की जो महिलाएँ और पुरुष बापू को अपना जानी दुश्मन समझते थे, वे ही खुले मन से भक्ति-भाव के साथ उन्हें प्रणाम करने आए और कहने लगे, "आप समसुच खुदा के फरिश्ते हैं। हमारी बेटी के लिए आपने जो कुछ किया, उसके बदले में हम आपकी क्या खिदमत कर सकते हैं?"

बापू ने कहा, "मैं तो एक अदना सेवक हूँ। न तो मैं कोई फ़रिश्ता हूँ, न पैगंबर। हाँ, सेवा करना मेरे शौक का विषय है। इस बच्ची का बुखार आज उतर गया, इसका यश मुझे नहीं है। आज मैंने इसे थोड़ा साफ़ किया और इसके पेट में पोषण देनेवाली थोड़ी खुराक गई, यह ठीक हो गई।"

काम की चीज़

गांधीजी गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए इंग्लैड जा रहे थे। तब हवाई

जहाज़ों का इतना चलन नहीं था। पानी के जहाज़ पर वे प्रार्थना, चर्खा कातने आदि का अपना कार्यक्रम नियमित रूप से चलाते थे। यात्री अंग्रेज बालक चर्खे को आश्चर्य की दृष्टि से देखते थे और कताई के समय गांधीजी को घेरकर बैठ जाते थे। बच्चों के प्रति प्रेम-भाव रखने और अपने स्वभाव के कारण वे धीरे-धीरे उन बालकों के मित्र बन गए।

लेकिन कुछ अंग्रेज उन्हें अपना शत्रु समझते थे, क्योंकि गांधीजी भारत में उनका साम्राज्य समाप्त करना चाहते थे। गांधीजी जब जहाज़ के डेक पर घूमने के लिए जाते थे तो एक गोरा उन्हें गाली तक दिया करता था। पर गांधीजी पर गालियों का कोई प्रभाव न देखकर वह एक कदम आगे बढ़ा। उसने गांधीजी के बारे में ताने देते हुए एक कविता लिखी और लिखा हुआ कागज गांधीजी को पकड़ा दिया। गांधीजी ने उसे खोलकर पढ़ा भी नहीं। उसी क्षण फाड़कर कूड़े की टोकरी में फेंक दिया, लेकिन उसमें लगी हुई पिन निकालकर सावधानी से अपनी डिब्बी में रख ली।

अपनी शरारत को व्यर्थ जाते देखकर वह गोरा बोला, "अरे गांधी, वह कविता पढो तो सही, उसमें तुम्हारे लिए कुछ बढ़िया चीज़ है।"

गांधीजी ने डिब्बी में रखी हुई पिन की ओर इशारा करते हुए कहा, "हाँ, हाँ, जो बढ़िया चीज़ थी वह मैंने निकालकर इस डिब्बी में रख ली है।"

गांधीजी के इस विनोद भरे कटाक्ष से पास बैठे हुए उनके साथी और अन्य गोरे हँस पड़े। अपनी इस प्रकार फजीहत देखकर वह गोरा खिसिया गया और उस दिन से गांधीजी को गाली देना भूल गया।

दीया किसने जलाया ?

सेवाग्राम की बात है। उस दिन गांधीजी का जन्म-दिन था। आश्रम में जन्म-दिन का कार्यक्रम बड़ी सादगी के साथ मनाया जाता था। इस वर्ष भी वहाँ न कोई सजावट थी, न फूल-माला का ही प्रबंध था। केवल गांधीजी के बैठने के सामने ऊँची जगह पर घी का दीया जल रहा था।

गांधीजी ने दीये की ओर देखा। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। प्रार्थना प्रारम्भ हुई। आज प्रार्थना के बाद गांधीजी का विशेष प्रवचन होने वाला था। गांधीजी ने

आरम्भ में ही पूछा, "यह दीया किसने जलाया ?"

कस्तूरबा ने कहा, "मैंने।"

गांधीजी कहने लगे, "आज के दिन आश्रम में सबसे खराब बात कोई हुई है तो यह हुई कि दीया जलाया गया। आज मेरा जन्मदिन है, क्या इसीलिए यह दीया जलाया गया ? अपने आस-पास के देहातों में जाने पर मैं देखता हूँ कि गाँव वालों को रोटी पर लगाने के लिए तेल तक नहीं मिलता और आज मेरे आश्रम में घी जलाया जा रहा है। गाँव वालों को जो चीज़ नहीं मिलती, उनका उपभोग हमें नहीं करना चाहिए। मेरा कार्य सत्कार्य करना है, पाप नहीं।"

बापू की यह सीख आश्रमवासियों को जीवनभर याद रही।

बर्तन साफ़ करने वाला अध्यक्ष

बात उन दिनों की है, जबकि गांधीजी, महात्मा गांधी नहीं; बल्कि बैरिस्टर गांधी थे और दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध जनमत जाग्रत कर रहे थे।

उन्हीं दिनों वे एक शिष्टमंडल के साथ लंदन गए। लंदन में उन दिनों आजकल की तरह ही अनेक भारतीय विद्यार्थी पढ़ा करते थे।

उन्हें जब गांधीजी के आगमन का पता चला तो उन्होंने अन्य भारतीयों को भी सूचना देकर इकट्ठा कर लिया और एक सम्मेलन की रूपरेखा बनाई। पहले भोज और फिर भाषण। अब काम का बटवारा हुआ। सब अपने-अपने काम में लग गए।

एक काम बाकी रह गया था, वह था कार्यक्रम की अध्यक्षता का। तभी किसी ने बैरिस्टर गांधी का नाम सुझाया। इस नाम पर सब सहमत हो गए।

तैयारी पूरी कर सभी काम में जुट गए। कोई बर्तन माँज रहा था, कोई उन्हें धो रहा था। कोई सब्जी काट रहा था, तो कोई पका रहा था। वे सभी भारतीय तो थे, किन्तु थे अलग-अलग प्रांतों और नगरों के रहनेवाले। एक दूसरे को पहचानने वाले भी कम ही थे। तभी एक प्रसन्नचित्त, दुबला-पतला नाटे कद का आदमी आया और बर्तन माँजने-धोने लग गया।

सभा हुई तो संस्था के उपप्रधान वहाँ पर आए। वे उस नाटे-से युवक को काम करते देखकर आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने पास खड़े हुए कुछ युवकों से पूछा,

"क्यों भाई, क्या आप लोग उन श्रीमान को जानते हैं ?"

"नहीं" एक साथ तीन-चार युवकों ने कहा। उपाध्यक्ष महोदय बुदबुदा उठे, "अरे भाई! गजब हो गया, गजब!"

"क्यों, ऐसी क्या बात हो गई ?" एक युवक ने पूछा।

"अरे भाई, देख नहीं रहे हो, ये तो बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी ही हैं। हमारे आज के समारोह के परम श्रद्धेय अध्यक्ष।" उपाध्यक्ष बोले और दौड़कर गांधीजी के पास जाकर कहने लगे, "बैरिस्टर साहब! हम पर इतनी कृपा कीजिए। आप क्यों कष्ट कर रहे हैं।"

"ऐसी क्या गुस्ताखी हो गई साहब! आप बेकार ही परेशान हो रहे हैं। अरे! अपना ही तो काम था, इसलिए करने लग गया।" गांधीजी मुस्कराते हुए बोले।

सभी ने उन्हें रोकने का काफी प्रयत्न किया। परन्तु वे बराबर काम में लगे रहे और काम खतम कर, अतिथियों को भोजन परोसने लगे। भोजन खतम हुआ तो उन्होंने अपना भाषण शुरू कर दिया।

—**लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'**

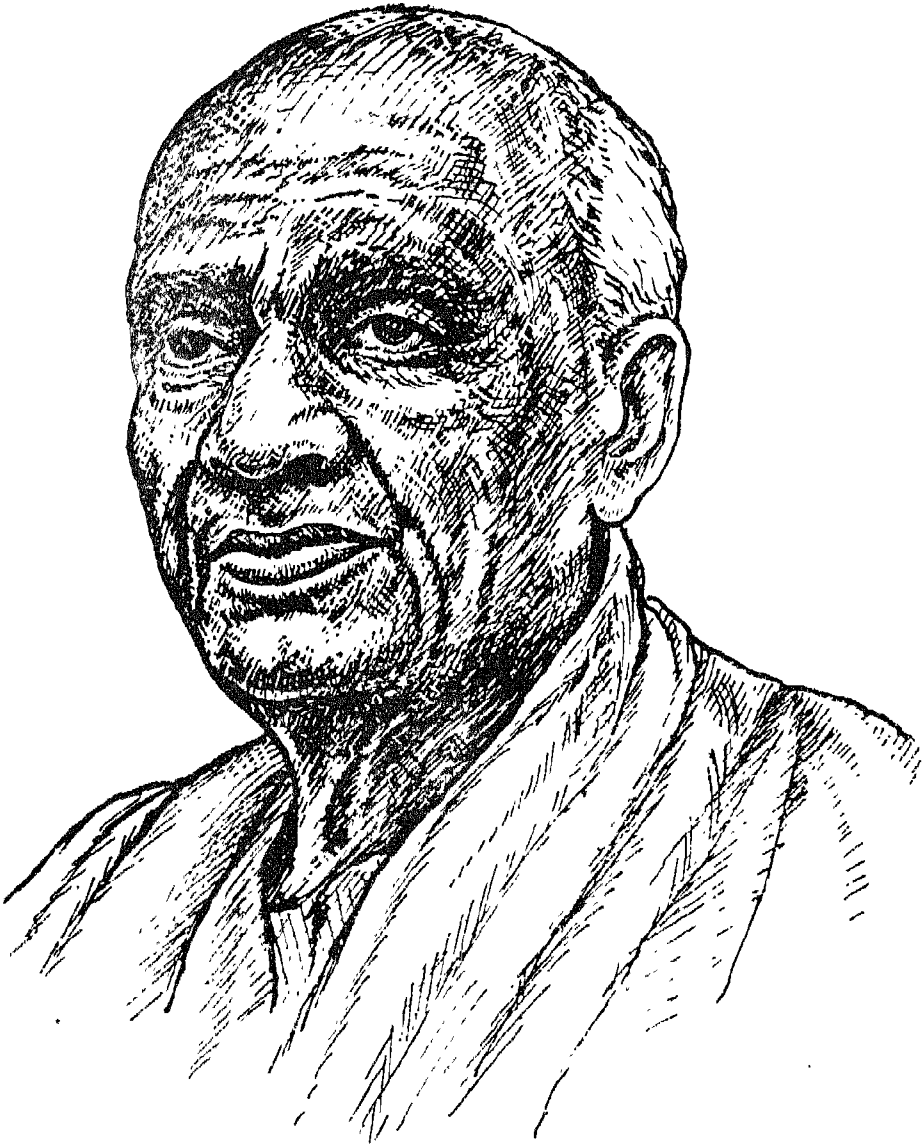
प्रश्न-अभ्यास

१. महात्मा गांधी का पूरा नाम क्या था ? उनका जन्म कहाँ हुआ था ?
२. शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् गांधीजी ने अपना पहला कार्य-क्षेत्र कहाँ बनाया ?
३. दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों के लिए उन्होंने क्या किया ? किन परिस्थितियों से वे राजनीति में आए ?
४. महात्मा गांधी के मुख्य सिद्धान्त क्या थे ?
५. गांधीजी ने सत्य और अहिंसा की क्या व्याख्या की है ?
६. अंग्रेजों ने भारत कब और क्यों छोड़ा ?

७. समाज की किन कुरीतियों के प्रति महात्मा गांधी ने आवाज उठाई।

८. गांधीजी के जीवन से हमें क्या प्रेरणा मिलती है ? उनके जीवन से संबंधित कुछ घटनाओं का उल्लेख करो।

९. प्रेरक घटनाओं के आधार पर गांधीजी के सिद्धान्तों एवं विचारों का उल्लेख करो।



सरदार वल्लभभाई पटेल

२.

सरदार वल्लभभाई पटेल

सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम लेते ही हमारे सामने एक ऐसे व्यक्ति का चित्र आ जाता है जो न केवल भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का वीर सेना नायक था, वरन् जिसने स्वतंत्र भारत को एक सूत्र में संगठित करके सारे संसार को चकित कर दिया। सन् १९४७ ई० में अंग्रेज़ों को यहाँ से जाने के लिए बाध्य होना पड़ा पर वे भारत की ५३४ देशी रियासतों को आज़ाद बने रहने की ऐसी छूट दे गए जिसके रहते देश टुकड़े-टुकड़े हो जाता। सरदार पटेल ने अधिकतर समझा-बुझाकर और एक दो मामलों में शक्ति दिखाकर सबको एक केन्द्रीय सरकार के नीचे ला खड़ा किया। गांधीजी की प्रेरणा से बारडोली (गुजरात) के किसानों को संगठित करके उन्होंने देश में जागरण की नई ज्योति जगाई, अपनी चमकती हुई वकालत को छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े और त्याग के जीवन का एक नया आदर्श लोगों के सामने रखा। बारडोली की सफलता से उन्हे 'सरदार' की उपाधि मिली और भारत के देशी राज्यों को स्वतंत्र भारत में मिलाने के अपने महान कार्य से वे 'लोह पुरुष' कहलाए।

वल्लभभाई का जन्म ३१ अक्तूबर १८७५ ई० को गुजरात के खेड़ा जिला के करमसद गाँव में ऐसे परिवार में हुआ जो अपनी देशभक्ति के लिए प्रसिद्ध था। उनके पिता श्री झबेर भाई १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में झाँसी की रानी की सेना में भर्ती होकर अंग्रेजों से लोहा ले चुके थे। वल्लभभाई उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे, पर आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उन्हें मैट्रिक के बाद ही मुख्तारी की परीक्षा पास करके आजीविका कमाने में लगना पड़ा। फिर भी उन्होंने अपना इरादा नहीं छोड़ा। कुछ धन अर्जित कर पहले उन्होंने अपने बड़े भाई विट्ठलभाई पटेल को विलायत भेजकर बैरिस्ट्री की शिक्षा दिलाई और फिर स्वयं भी सन् १९१० ई० में विदेश

गए और सन् १९१३ ई० में बैरिस्टर बनकर लौटे।

वे फौजदारी के प्रसिद्ध वकील थे। खूब आमदनी थी। आराम की ज़िन्दगी बिता सकते थे, लेकिन देश की सेवा उनके जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य था। १९१५-१६ में गांधीजी ने अहमदाबाद को केन्द्र बनाकर राष्ट्रसेवा का काम आरंभ कर दिया था। पटेल की यद्यपि सार्वजनिक कामों में पर्याप्त रुचि थी और वे नगरपालिका के कामों में भी हिस्सा लेते थे, पर उन्हें यह समझते देर न लगी कि वकालत करके धन कमाने का जीवन और देश-सेवा का जीवन साथ-साथ नहीं चल सकता। अतएव चलती हुई वकालत को ठोकर मारकर वे स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। १९१६ से १९४५ ई० तक के प्रत्येक आंदोलन में सरदार पटेल ने सक्रिय भाग लिया और वे शीघ्र ही देश के राष्ट्रीय नेताओं में गिने जाने लगे। खेड़ा सत्याग्रह, बारडोली आंदोलन, डाण्डी-यात्रा, सविनय अवज्ञा आंदोलन, व्यक्तिगत सत्याग्रह और अंत में 'भारत छोड़ो' राष्ट्रीय संघर्ष में सरदार अगली पंक्ति में थे।

सरदार पटेल बड़े स्पष्टवादी व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में असाधारण दृढ़ता थी। उन्हें उनके मार्ग से कोई विचलित नहीं कर सकता था। जो निश्चय कर लेते, उसे पूरा करके ही छोड़ते थे।

देश स्वतंत्र हुआ, पर साथ ही विभाजित भी हो गया। शांति स्थापित करने और लाखों विस्थापितों को बसाने की, और देशी राज्यों को देश की मुख्य धारा से मिलाने की समस्या भारत के प्रथम गृहमंत्री के रूप में सरदार पटेल के सामने थी। वे हत-प्रभ नहीं हुए, विचलित भी नहीं हुए। बड़ी दृढ़ता तथा सूझ-बूझ से उन्होंने शीघ्र ही समस्याओं पर विजय पाई। १५ सितंबर, १९५० को जब उनका निधन हुआ तो वे विरासत में हमारे लिए एक संगठित और सुदृढ़ राष्ट्र छोड़ गए। उनके निधन पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "इतिहास उन्हें आधुनिक भारत का निर्माता और भारत का एकीकरण करने वाले के रूप में याद करेगा। स्वतंत्रता-युद्ध के वे एक महान सेनापति थे। वे ऐसे मित्र, सहयोगी और साथी थे, जिनके ऊपर निर्विवाद रूप से भरोसा किया जा सकता था।"

सरदार पटेल के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाएँ तथा प्रेरक प्रसंग नीचे दिए जा रहे हैं :

रास्ते का रोड़ा

वल्लभभाई के गाँव में अंग्रेज़ी स्कूल नहीं था। इसलिए अंग्रेज़ी पढ़ने वाले विद्यार्थी नित्य ६-१० किलोमीटर पैदल दूसरे गाँव जाते थे। गर्मियों मे सवेरे ७ बजे से स्कूल लगता था, इसलिए सूर्योदय से पहले ही घर से निकलकर खेतों से होकर जाना पड़ता था। खेतों की मेड़ पर लगे एक पत्थर से अक्सर किसी-न-किसी को ठोकर लग जाती थी। एक दिन उस सीमा को पार करने के बाद साथियों ने देखा कि उनमें से एक कम है। वल्लभभाई पीछे छूट गए थे, वे खेत की मेड़ पर किसी चीज़ से ज़ोर आजमाई कर रहे थे। साथियों ने आवाज़ दी, "तुम पीछे क्यों रुक गए? क्या कर रहे हो?" वे बोले, "ठहरो मैं आता हूँ।" थोड़ी देर में उस गड़े हुए भारी पत्थर को हटाकर वे उनसे आ मिले और सहज भाव से बोले, "रास्ते के इस पत्थर से अक्सर अड़चन पड़ती थी। अँधेरे में न जाने कितनों के पैरों में चोट आई होगी। आते-जाते चोट लगे और रुकावट पड़े, ऐसी चीज़ को हटा देने के सिवा चारा नहीं। मैंने निश्चय किया था कि आज उसे हटाकर ही आगे बढ़ूँगा, इसलिए रुक गया था।"

सरदार क्यों कहलाए

वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि कब और कैसे मिली, इसका बड़ा रोमांचक इतिहास है। वह जमाना था, जब अंग्रेज़ी सरकार और राजा-महाराजाओं के साथ मिलकर जमींदार किसानों को मनमाने ढंग से सताया करते थे और उनका शोषण करते थे। गुजरात के बारडोली क्षेत्र में बिना किसी कारण के किसानों के ऊपर लगान की दर बढ़ा दी गई। गरीब किसान इस बोझ को बर्दास्त नहीं कर सकते थे। वे वल्लभभाई के पास गए। वल्लभभाई ने कहा, "मेरे साथ खिलवाड़ नहीं हो सकता, अगर आप जोखिम उठाने को तैयार हों, तभी मैं कुछ कर सकता हूँ।" लोगों पर इसका असर हुआ। वे तैयार हो गए। वल्लभभाई ने उनकी हिम्मत बढ़ाई और बढा हुआ लगान न देने की राय दी। उन्होंने कहा, "आप तो किसान हैं। किसान कभी दूसरे की ओर हाथ नहीं पसारता। आप सब काम करने वाले हैं, फिर डर किसका? आप किसी से न डरें। न्याय और प्रतिष्ठा के लिए बराबर लड़िए। आवश्यकता पड़े तो सारे देश के किसानों के लिए लड़कर दिखा दीजिए। देश के लिए अपने को मिटाकर संसार में

अपनी अमर कीर्ति फैला दीजिए।" पटेल की इस ललकार ने बारडोली के किसानों में नया जोश भर दिया। अंग्रेजी सरकार ने भीषण अत्याचार किए, पर किसान झुके नहीं। अंत में सरकार को घुटने टेकने पड़े और समझौता करने के लिए बाध्य होना पड़ा। बारडोली के इस किसान-सत्याग्रह की ओर सारे देश की आँखें लगी हुई थीं। यहाँ की सफलता ने भारत भर के किसान-आंदोलन में नई जान डाल दी। इस सफलता का पूरा श्रेय वल्लभभाई पटेल को था। वही इस आंदोलन के प्रमुख सरदार थे। सारे देश ने 'सरदार' कहकर उन्हें बधाई दी। इस सफलता के बाद वे 'सरदार वल्लभभाई पटेल' के नाम से विख्यात हुए।

हरिजनों के बीच

काठियावाड़ राजनैतिक परिषद् की बैठक सन् १९२२ ई० में वढ़बाण में हुई। इसमें अस्पृश्यता-निवारण का प्रस्ताव पास हुआ। पर सभा में हरिजनों के बैठने के लिए अलग स्थान रखा गया था। यही नहीं, एक स्वयंसेवक को यह काम सौंपा गया कि वह हरिजनों और अन्य लोगों को उनके लिए निश्चित अलग-अलग स्थानों में ही बैठने के लिए कहे। सरदार का ध्यान ज्योंही इस ओर गया, वे अपने स्थान से उठे और हरिजनों के लिए निश्चित स्थान में उन्हीं के बीच जाकर बैठ गए। उनकी देखा-देखी कुछ अन्य नेता भी वहीं पहुँचे और मंच का सारा आकर्षण उधर ही चला गया। सरदार ने अपना भाषण भी हरिजनों के बीच से ही दिया।

व्यथा और कर्तव्यनिष्ठा

वल्लभभाई पटेल फौजदारी के एक मामले में अदालत में पैरवी कर रहे थे। मामला संगीन था और उनकी जरा-सी असावधानी अभियुक्त को फाँसी दिला सकती थी। गंभीरतापूर्वक वे अपने तर्क दे रहे थे। तभी किसी ने उनके नाम का एक तार लाकर दिया। उन्होंने तार खोला, पढ़ा और मोड़कर जेब में रख लिया। वे उसी तन्मयता से बहस करते रहे। अदालत का समय समाप्त हुआ और वह उठ गए। साथी वकील ने वल्लभभाई से तार के बारे में पूछा तो बोले, "मेरी पत्नी की मृत्यु हो गई। उसी की सूचना थी।" साथी ने कहा, "इतनी बड़ी घटना घट गई और तुम बहस करते

रहे।" वल्लभभाई का उत्तर था, "और क्या करता ? वह तो चली गई। क्या अभियुक्त को भी चला जाने देता ?"

बैरिस्टर पटेल

वल्लभभाई बड़ी सूझ-बूझ के व्यक्ति थे। वकालत के दिनों की एक घटना है। रेलवे के एक थानेदार को अंग्रेज़ अफ़सर ने चोरी के झूठे मामले में फँसा दिया। मुकदमा चलाने से पहले वह अफ़सर यह जाँच कर रहा था कि थानेदार को पहले भी सजा हुई या नहीं। थानेदार वल्लभभाई के पास गए और उनसे मदद माँगी। सारी बात सुनने के बाद वल्लभभाई की राय से थानेदार स्वयं अंग्रेज़ अफसर के पास गया और बोला, "मुझे पहले सजा हो चुकी है।" अफ़सर तो इस प्रकार की सूचना की तलाश में था ही। उसके पूछने पर थानेदार ने बताया कि उसे नौ महीने की सज़ा करीब तीस साल पहले हुई थी।

मुकदमा चला। इस बीच बीमारी के कारण सरदार पटेल उसकी पैरवी नहीं कर सके और उसे ६ महीने की सजा हो गई। बाद में अपील हुई तब सरदार उपस्थित थे। सरकारी वकील ने सज़ा का समर्थन किया और कहा कि सरकारी अफ़सर होने के कारण थानेदार का अपराध और भी बढ़ जाता है। फिर उसे तो पहले भी सजा हो चुकी है। उसने स्वयं यह बात स्वीकार की है। सरदार ने आग्रह किया, "अभियुक्त को पहले सज़ा हुई, इसका प्रमाण दिया जाए।" सरकारी पक्ष ने जब अभियुक्त द्वारा स्वयं इस बात को स्वीकार करने की बात कही, तो सरदार ने गंभीरतापूर्वक कहा, "जी हाँ, अभियुक्त को तीस साल पहले सज़ा हुई थी, यह लिखा हुआ है। इसी के साथ यह भी लिखा है कि अभियुक्त की उम्र तीस साल की है।"

भाई के लिए त्याग

वल्लभभाई विदेश जाकर वकालत की पढ़ाई करना चाहते थे। अपनी कमाई से धन बचाकर वे सन् १९०५ ई० में बाहर जाने की तैयारी करने लगे। जिस जहाज़ की कंपनी से उन्होंने जाने के लिए पत्र व्यवहार किया, उसका अंतिम उत्तर वी० जी० पटेल के नाम से आया। बड़े भाई (विट्ठल भाई) और वल्लभभाई दोनों अंग्रेज़ी में वी०

जी० पटेल लिखा करते थे। इसलिए दो में से कोई भी जा सकता था। बड़े भाई की इच्छा देखकर वल्लभभाई ने सहर्ष उनको विलायत भेजना तो स्वीकार किया ही, उनकी पढ़ाई का पूरा खर्च भी भेजते रहे। विट्ठलभाई के बैरिस्टर बनकर वापस आने के बाद सन् १९१० ई० में वल्लभभाई विलायत जा सके।

—अनिरुद्ध राय

प्रश्न-अभ्यास

१. वल्लभभाई पटेल का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

२. वल्लभभाई पटेल की मृत्यु कब हुई थी ?

३ वल्लभभाई पटेल ने अपने बड़े भाई के लिए क्या त्याग किया ?

४. गांधीजी के विचारों का वल्लभभाई पटेल पर क्या प्रभाव पड़ा ?

५. वल्लभभाई पटेल ने वकालत क्यों छोड़ी ?

६. राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आंदोलन में वल्लभभाई पटेल का क्या योगदान था ?

७ वल्लभभाई को 'सरदार' की उपाधि से क्यों विभूषित किया गया ?

८. देश के विभाजन के उपरांत राष्ट्रीय एकता के लिए उन्होंने क्या किया ?

९. वल्लभभाई पटेल की मृत्यु पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने क्या कहा था ? उस कथन से वल्लभभाई पटेल के किन चारित्रिक गुणों का पता चलता है ?

३.

श्रीमती सरोजिनी नायडू

आधुनिक भारत को प्रतिष्ठा प्रदान कराने में जिन महिलाओं का विशेष योगदान रहा है, उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू का प्रमुख स्थान है। उनकी देन बहुमुखी है। अंग्रेजी में उच्च स्तर की कविताएं लिखकर भारतीय जीवन-मूल्यों एवं आदर्शों से उन्होंने सारे संसार को परिचित कराया। अंग्रेजी भाषा पर उनके अधिकार और उनकी काव्य-प्रतिभा देखकर पश्चिमी जगत् के विद्वानों ने मुक्त कंठ से उनकी प्रशंसा की। पर सरोजिनी का कार्यक्षेत्र केवल कविता-रचना तक सीमित नहीं था। उन्होंने देश के नव-जागरण और स्वतंत्रता-संग्राम में उससे भी अधिक उत्साह से भाग लिया। राजनीतिक कामों में उन्होंने गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका से भारत वापस आने से पहले ही हिस्सा लेना आरम्भ कर दिया था। भारतीय राजनीति में गांधीजी के आगमन के बाद श्रीमती नायडू उनकी निकट सहयोगी बन गई।

सरोजिनी का जन्म १३ फरवरी १८७९ को पूर्वी बंगाल के ब्रह्मनगर नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय भारतीय और पश्चिमी साहित्य के अच्छे विद्वान थे। वे बंगला के अतिरिक्त अंग्रेजी, संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, रूसी, और हिब्रू भाषाएँ भी जानते थे। ब्रह्मसमाजी विचारों से प्रभावित श्री अघोरनाथ की सर्वाधिक रुचि रसायन शास्त्र में थी और इस विषय पर उन्होंने एडिनबर्ग विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि भी ली थी। रियासत के निमंत्रण पर उन्होंने 'हैदराबाद कालेज' की स्थापना की और वहीं बस गए। आठ भाई-बहिनों में सबसे बड़ी सरोजिनी को परिवार का यह बौद्धिक वातावरण मिला। हैदराबाद के प्रवास ने उन्हें विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क में आने का अवसर दिया। सरोजिनी के भाई ने लिखा है, "उनका घर ज्ञान और संस्कृति का संग्रहालय था और विद्वानों तथा विचारकों से भरा रहता था। वह



श्रीमती सरोजिनी नायडू

सबके लिए सदा खुला रहता था।"

आरंभ में सरोजिनी की अंग्रेजी की ओर कोई रुचि नहीं थी, पर पिता उन्हें यह भाषा सिखाना चाहते थे।अंग्रेजी बोलने से इनकार करने पर उनके पिता ने सरोजिनी को पूरे एक दिन कमरे में बंद रखा। इसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि वह इस भाषा का पूरा ज्ञान प्राप्त करने में जुट गई। पिता उसे गणितज्ञ या वैज्ञानिक बनाना चाहते थे। पर भावुक सरोजिनी का मन कुछ और ही ताने-बाने बुन रहा था। एक दिन ११ वर्ष की बालिका सरोजिनी बीजगणित का सवाल करने बैठी, पर लिख डाली एक कविता। जब उसने गाकर सुनाई तो सारा परिवार इस 'गाने वाली चिड़िया' की प्रतिभा से मुग्ध हो गया। अब तो लिखने का जो क्रम चला, वह चलता ही रहा। १३ वर्ष की अवस्था में उसने १३०० पंक्तियों की एक लंबी कविता और २ हजार पंक्तियों का एक नाटक लिख डाला। सरोजिनी का कंठ अत्यन्त मधुर था। वे जब कविता पाठ करती तो उनकी संगीतमयी मधुर ध्वनि से श्रोता मंत्र-मुग्ध से हो उठते थे। उनकी कविता की भाषा में भी अद्भुत लालित्य था। इसी कारण आगे चलकर उन्हें 'भारत-कोकिला' की संज्ञा से अभिहित किया गया।

कविता-रचना के साथ-साथ अध्ययन कार्य भी चलता रहा। उन दिनों दक्षिण भारत में केवल मद्रास विश्वविद्यालय था, जहाँ मैट्रिक की परीक्षा होती थी। सन् १८६१ ई० में सरोजिनी ने यहाँ से प्रथम श्रेणी में, सब छात्रों से प्रथम स्थान प्राप्त करके मैट्रिक की परीक्षा पास की। एक बालिका के लिए ऐसी सफलता प्राप्त करना उन दिनों असाधारण बात थी। अध्ययन के साथ-साथ सरोजिनी में गंभीरता आती गई। उनकी कविता के विषय भी बदल गए। अब परीक्षा पास करने में उनकी रुचि नहीं रही और वे अपना समय स्वतंत्र अध्ययन करने और उच्च कोटि की कविताएँ लिखने में लगाने लगीं। छात्रवृत्ति प्राप्त करके किंग्ज कालेज, लंदन और गिर्टन, कैम्ब्रिज में अध्ययन करने का अवसर उन्हें मिला, पर उन्होंने कोई उपाधि नहीं ली। हाँ, ब्रिटेन की इस यात्रा में उन्हें प्रमुख साहित्यकारों से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। वे स्विट्जरलैण्ड और इटली भी गईं। इन देशों के प्राकृतिक सौन्दर्य ने भी सरोजिनी को प्रभावित किया।

भारत लौटने पर उन्होंने अपनी पसंद से डा० नायडू से विवाह किया। इस अंतर्प्रान्तीय और अंतर्जातीय विवाह के लिए ब्रह्मसमाजी विचार के माता-पिता ने भी सहर्ष

सहमति प्रदान की। उनका वैवाहिक जीवन बड़ा सुखी था।

सरोजिनी का पहला कविता-संग्रह 'गोल्डेन थ्रैशोल्ड' के नाम से सन् १९०५ ई० में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक से इंग्लैंड का साहित्य-जगत् आश्चर्यचकित रह गया। साहित्यकारों, समालोचकों और समाचार-पत्रों ने एक स्वर से उसकी प्रशंसा की। सरोजिनी ने अंग्रेजी में लिखा, क्योंकि वही भाषा उन्हें अच्छी तरह आती थी पर उनकी कविता के विषय थे भारत की पृष्ठभूमि और इस देश की स्वस्थ सांस्कृतिक विशेषता। भारत ने भी इस सफलता पर सरोजिनी का अभिनंदन किया। दूसरा कविता-संग्रह 'दि बर्ड ऑफ टाइम' १९१२ में निकला। इसकी प्रशंसा करते हुए 'यार्क-शायर पोस्ट' नामक पत्र ने लिखा था, "श्रीमती नायडू ने हमारी भाषा को तो समृद्ध किया ही है, पूर्वी देशों की भावना और आत्मा से भी हमारा निकट का संपर्क कराया है।" तीसरी कविता-पुस्तक थी 'दि ब्रोकेन विंग'। इसका प्रकाशन सन् १९१७ ई० में हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शामिल होने पर कार्य-क्षेत्र बदल जाने के कारण उनका कविता-लेखन का कार्य मंद पड़ गया, पर जो स्थान अंग्रेजी काव्य में उन्होंने अपने लिए बना लिया था, वह आज भी विद्यमान है।

प्रतिभा का क्षेत्र सीमित नहीं रहता। बहुमुखी प्रतिभा की धनी सरोजिनी के लिए भी स्वयं को केवल कविता तक सीमित रखना सम्भव नहीं था। फिर, वह तो देश के नवजागरण की बेला थी। श्री गोपालकृष्ण गोखले से प्रेरणा लेकर सरोजिनी ने राष्ट्रीय एकता और महिलाओं की उन्नति के कार्यों में रुचि लेना आरंभ किया। वे जागृति का संदेश लेकर देश के विभिन्न भागों में भाषण देने लगीं। पर्दा-प्रथा पर प्रहार, हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल और स्वदेशी की भावना का प्रचार उनके मुख्य विषय थे। सरोजिनी को लेखनी के साथ-साथ वाणी का भी वरदान मिला था। लोग उनके धारा-प्रवाह भाषण को मंत्र-मुग्ध होकर सुना करते थे।

गांधीजी के सम्पर्क में आने पर श्रीमती सरोजिनी नायडू को सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने के लिए एक नई दिशा मिली। बापू से उनकी पहली भेंट लंदन में हुई थी। सन् १९१४ ई० में गांधीजी श्री गोखले से मिलने के लिए दक्षिण अफ्रीका से वहाँ गए थे। इस भेंट का वर्णन करते हुए सरोजिनी नायडू ने लिखा है, एक पुराने ढंग के मकान की सीढ़ियाँ चढ़कर जब मैं ऊपर गई, तो मैंने एक छोटे आदमी का सजीव चित्र देखा। उसका

सिर छिपा हुआ था, वह फर्श पर जेल के काले कंबल पर बैठा जेल के ही लकड़ी के कटोरे में टमाटर और जैतून के तेल का भोजन कर रहा था। उसके आस-पास भुनी हुई मूँगफली और सूखे केले के आटे से बने बेस्वाद बिस्कुटों के पिचके हुए कुछ डिब्बे रखे थे। मैं उस प्रसिद्ध नेता के मजेदार दर्शन पाकर अपने आप हँस पड़ी जिसका नाम हमारे देश में घर-घर लिया जाने लगा था। उन्होंने आँखें ऊपर उठाई और मुझे देखकर हँसते हुए बोले, "तुम अवश्य ही श्रीमती नायडू हो और कौन इतना आदर-विहीन हो सकता है।" सरोजिनी, गांधी जी से १० वर्ष छोटी थी और इस समय ३० वर्ष की हो चुकी थी।

पहले बीमारी के कारण और उसके बाद श्री गोखले के परामर्श पर देश की स्थिति का अध्ययन करने के लिए गांधीजी आरंभ में सक्रिय राजनीति से अलग रहे। इस बीच सरोजिनी के जोशीले भाषणों की देश भर में बड़ी धूम थी। जब गांधीजी १९१६ के कांग्रेस-अधिवेशन में सम्मिलित हुए, उन्होंने वहाँ भी सरोजिनी को उत्साहपूर्वक भाग लेते हुए पाया। यहीं पर जवाहरलाल नेहरू से भी उनकी पहली भेंट हुई थी। नेहरूजी ने लिखा है, "मैं उन दिनों सरोजिनी नायडू के कई धारा-प्रवाह भाषणों से प्रभावित हुआ था। वे राष्ट्रीयता और देश-भक्ति से भरी-पूरी थीं।" इस समय देश ने स्वतंत्रता-संग्राम के संचालन की बागडोर गांधीजी के हाथों में सौंप दी थी। सरोजिनी भी कविता के क्षेत्र से हटकर राष्ट्रीय संघर्ष में तन-मन से कूद पड़ीं। प्रथम सत्याग्रह-संग्राम का प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करने के लिए सन् १९१९ ई० में गांधीजी ने साबरमती आश्रम में कुछ लोगों की जो बैठक बुलाई, उसमें सरोजिनी ने सक्रिय भाग लिया। उन्होंने आंदोलन के पक्ष में वातावरण बनाने के लिए देश के विभिन्न भागों का दौरा भी किया।

सन् १९२२ ई० में गांधीजी पर मुकदमा चला और उन्हें ६ वर्ष की सजा हुई। सरोजिनी ने उसी समय खद्दर धारण किया और देश के कोने-कोने में सत्याग्रह संग्राम का संदेश पहुँचाने के काम में जुट गईं। अब वे प्रसिद्ध कवयित्री के साथ-साथ स्वतंत्रता-संग्राम की प्रथम कोटि की नेता भी थी। कांग्रेस ने सन् १९२५ ई० में उन्हें कानपुर-अधिवेशन का अध्यक्ष चुनकर उनके नेतृत्व के गुणों का समादर किया।

भारतवासियों में स्वतंत्रता-प्राप्ति की भावना बढ़ रही थी, अतः इस देश को बदनाम करने के लिए ब्रिटिश सरकार की प्रेरणा से मिस मेयो नामक विदेशी महिला

ने 'मदर इण्डिया' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में हमारे देश और समाज को संसार की दृष्टि में गिराने के लिए तरह-तरह की असत्य और अपमानजनक बातें अंकित की गई थीं। इसका प्रभाव समाप्त करने और लोगों को सही बातों से परिचित कराने के लिए गांधीजी के परामर्श पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने अमरीका की यात्रा की। वहाँ उनके भाषणों और लेखों का बड़ा अनुकूल प्रभाव पड़ा। श्री सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ ने, जो उन दिनों अमरीका में थे, गांधीजी को लिखा था, "सरोजिनी नायडू की यात्रा आश्चर्यजनक रूप से सफल सिद्ध हुई है। उन्होंने सभी का दिल जीत लिया है। मैं सब जगह उनकी यात्रा के विषय में केवल प्रशंसा ही प्रशंसा सुन रहा हूँ।"

सन् १९३० ई० में गांधीजी ने 'डाण्डी मार्च' किया और नमक कानून तोड़ा। सरोजिनी महिलाओं के दल के साथ पहले से समुद्र के किनारे उपस्थित थीं। गांधीजी तथा अन्य नेता गिरफ्तार हुए और सरोजिनी को भी जेल में बंद कर दिया गया। कुछ समय बाद नेता रिहा हुए, समझौते की वार्ता चली और लंदन में गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में गांधीजी के साथ सरोजिनी नायडू ने भी भाग लिया। सम्मेलन सफल नहीं हुआ, क्योंकि ब्रिटिश सरकार की नीयत साफ नहीं थी। स्वदेश लौटते ही गांधीजी और सरोजिनी को फिर बंदी बना लिया गया। कुछ समय बाद मुक्त होने पर देश को अंतिम स्वतंत्रता-संग्राम के लिए तैयार करने के काम में सरोजिनी पूरी शक्ति से जुट गईं। वे कांग्रेस कार्यसमिति की प्रमुख सदस्या थीं और उनकी बातें लोग बड़े सम्मान के साथ सुनते थे। सन् १९४२ ई० आया और गांधीजी के नेतृत्व में देश ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन आरंभ किया। ८ अगस्त को बम्बई में जो नेता गिरफ्तार किए गए, उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू भी थीं। उन्हें गांधीजी; कस्तूरबा आदि के साथ पूना के आगा खाँ महल में कैद किया गया।

इस बार की जेल-यात्रा का सरोजिनी नायडू के स्वास्थ्य पर बड़ा प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। वे गंभीर रूप से अस्वस्थ हो गईं और २१ मार्च १९४३ को उन्हें बीमारी की अवस्था में कैद से रिहा कर दिया गया। इसके बाद धीरे-धीरे देश की राजनीतिक स्थिति बदलने लगी। नेता रिहा हुए और देश स्वतंत्रता-प्राप्ति के निकट पहुँच गया। पड़ोसी देशों के साथ स्वतंत्र भारत के संबंध बढ़ाने का आधार तैयार करने के उद्देश्य से मार्च १९४७ में दिल्ली में 'एशियाई संबंध सम्मेलन' का आयोजन किया गया था। श्रीमती

नायडू इस सम्मेलन की अध्यक्षा बनाई गई। इस अवसर पर उन्होंने बड़ा ही ओजस्वी और सारगर्भित भाषण दिया। सम्मेलन के प्रतिनिधि इससे अत्यधिक प्रभावित हुए। एशियाई देशों के आपसी सांस्कृतिक संबंधों के विषय में उनका भाषण प्रगति की नई दिशा की ओर संकेत करता था।

भारत स्वतंत्र हुआ और श्रीमती सरोजिनी नायडू को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल पद का भार सौंपा गया। उत्तरदायित्व के इतने उच्च पद पर आसीन होने वाली वह भारत की प्रथम महिला थीं। उनके कार्यकाल में उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन में नया उत्साह दिखाई दिया। जनता के सभी वर्ग उनका सम्मान करते थे और राजभवन सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया था। ऐसा प्रतीत होता था कि अब श्रीमती नायडू के अनुभव और कल्पनाशीलता से नवोदित राष्ट्र को आगे बढ़ाने में सहायता मिलेगी। पर इसी बीच ३० जनवरी १९४८ को दिल्ली में राष्ट्रपिता की हत्या कर दी गई। इस वज्रपात से सरोजिनी नायडू मर्माहत हो उठीं। उनके नेता, सहयोगी और पथ-प्रदर्शक जा चुके थे। यह आघात उनके लिए बड़ा घातक सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता गया। १ मार्च १९४९ की रात में अपनी नर्स से गाना सुनते हुए वे सोईं, तो फिर उठ नहीं सकीं। २ मार्च को प्रातः साढ़े तीन बजे उनकी आत्मा ने पार्थिव शरीर का त्याग किया।

श्रीमती नायडू ने छोटी उम्र से ही काव्य-रचना आरंभ की और ३८ वर्ष की उम्र में कविता लिखना बंद कर दिया था। वे पूरी तरह राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ी थीं। विद्वानों का मत है कि यदि उन्होंने लेखन-कार्य जारी रखा होता तो वे साहित्य की और भी अधिक सेवा करने में समर्थ होतीं, पर उनके लिए सार्वजनिक कार्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने विभिन्न रूपों में जो देश-सेवा की उससे समस्त देशवासियों, विशेषतः भारतीय नारी-समाज को प्रेरणा मिलती रहेगी।

—लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'

प्रश्न-अभ्यास

१. सरोजिनी नायडू का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
२. श्रीमती नायडू को कैसा पारिवारिक वातावरण मिला था ? उसका उनके व्यक्तित्व-निर्माण पर क्या प्रभाव पड़ा ?
३. श्रीमती नायडू की काव्य-कृतियों के नाम लिखकर उनकी तीन विशेषताएँ बताओ।
४. प्रथम बार श्रीमती नायडू ने गांधी जी को जिस रूप में देखा, उसका वर्णन करो।
५. गांधी जी ने सरोजिनी को क्यों कहा, "तुम अवश्य ही सरोजिनी नायडू हो ?"
६. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने श्रीमती नायडू की भाषण-कला के संबंध में अपनी आत्मकथा में क्या लिखा है ?
७. श्रीमती सरोजिनी नायडू ने स्वतंत्रता-संग्राम में क्या योगदान दिया ? संक्षेप में वर्णन करो।
८. श्रीमती नायडू की आकस्मिक मृत्यु का क्या कारण लेखक ने बताया है ?
९. कवयित्री रूप और राजनेता रूप में से तुम्हारी दृष्टि से श्रीमती सरोजिनी नायडू का कौन-सा रूप विशेष उल्लेखनीय है?

४.

देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद

"मैं जिस भारतीय प्रजातंत्र की कल्पना करता हूँ, उसका अध्यक्ष कोई किसान ही होगा", गांधीजी की यह अभिलाषा देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद के स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति होने पर निःसंदेह ही फलवती सिद्ध हुई। राजेन्द्र प्रसाद जन्मना या कर्मणा किसान तो नहीं थे, पर किसान के सच्चे प्रतिनिधि अवश्य थे। उनमें एक गंवई गाँव के किसान की-सी सादगी, सरलता, निश्छलता और कर्मठता विद्यमान थी। उनमें किसान की तपस्या भी थी और वे स्वभाव तथा वेशभूषा से ठेठ किसान लगते थे इसका कारण गाँव में बीता उनका बचपन भी हो सकता है, पर मूल तथ्य यह है कि उन्होंने कभी अपने को भारत की ग्रामीण संस्कृति से अलग और विशिष्ट बनाने का प्रयत्न नहीं किया, कृत्रिमता और बनावट का बाना धारण कर साधारण जन पर रौब गाँठने की उत्सुकता नहीं दिखाई। वे जिस समाज से आए थे, उसी के बने रहे, राष्ट्रपति बनने पर भी उसी से जुड़े रहे। यह गुण ऊपर से देखने पर जितना सरल लगता है, वास्तव में, संसार भर के नेताओं के आचरण और व्यवहार देखने पर उतना ही दुर्लभ प्रतीत होता है। उनके विचार, व्यवहार और वेशभूषा में भारतीयता की अमिट छाप थी। उनमें प्राचीन ऋषि-मुनियों की तपस्या और प्रज्ञा थी और थी साधुओं की साधुता। वस्तुतः राजेन्द्र बाबू का संपूर्ण जीवन ही भारतीय जीवन-मूल्यों एवं आदर्शों का प्रतिरूप था।

विद्यार्थी जीवन में कीर्तिमान स्थापित करनेवाले, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में निरभिमानी एवं सरल व्यक्तित्व वाले राजेन्द्र प्रसाद का जन्म ३ दिसम्बर १८८४ ई० को बिहार राज्य में छपरा जिले के जीरादेई ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम मुंशी महादेव सहाय था। सरलता का गुण माता-पिता तथा बिहार के लोक-जीवन के परिवेश से मिला था और कदाचित् कुशाग्रता उनकी जातीय विरासत थी। उनका लालन-



देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद

पालन संयुक्त परिवार में बड़े लाड़-प्यार से हुआ जिससे सबके साथ मिलकर काम करने और थोड़े में भी संतोष करने की वृत्ति का विकास हुआ।

बालक राजेन्द्र की शिक्षा उस समय की परंपरा के अनुसार घर पर ही आरंभ हुई। एक मौलवी साहब रात को पढ़ाने आते थे। गाँव की शिक्षा समाप्त करके वे छपरा और बाद में पटना पढ़ने गए और वहीं से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। बिहार, उड़ीसा तथा बंगाल तीन राज्यों के विद्यार्थियों में प्रथम स्थान प्राप्त कर उन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया। गांधीजी की तरह राजेन्द्र बाबू को भी बाल-विवाह का शिकार होना पड़ा था। जब वे केवल १२ वर्ष के थे और पाँचवी कक्षा में ही पढ़ रहे थे, तभी उनका विवाह हो गया।

मैट्रिक के बाद उच्च शिक्षा के लिए वे कलकत्ता चले गए और कलकत्ता विश्व-विद्यालय से उन्होंने एम० ए० [इतिहास] तथा एल० एल० बी० की उपाधि प्राप्त की। मैट्रिक की परीक्षा में उन्होंने जो कीर्तिमान स्थापित किया था, उसको सभी परीक्षाओं में बनाए रखा। इसीलिए एम० ए० की शिक्षा समाप्त करते ही उन्हें लंगटसिंह कालेज, मुजफ्फरपुर से प्रोफेसर का पद ग्रहण करने के लिए आमंत्रण मिला जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। लेकिन कुछ समय बाद उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और कलकत्ता उच्च न्यायालय मे वकालत करने के लिए सन् १६१५ ई० में चले गए और जब सन् १६१६ ई० में पटना उच्च न्यायालय स्थापित हुआ तो पटना चले आए। वर्ष-दो वर्ष की वकालत के बाद ही उनकी गिनती उच्च न्यायालय के श्रेष्ठ वकीलों में होने लगी। रात में जल्दी सोने और प्रातः चार बजे ही उठ जाने की आदत के कारण उनको विद्यार्थी जीवन, वकालती जीवन और बाद में राष्ट्रपति जीवन में भी कार्य करने का पर्याप्त समय मिल जाता था। जब तक लोग सोए रहते तब तक वे अध्ययन पूरा कर लेते थे। फाइलों को निपटा लेते थे और दिन भर के समय का उपयोग लोगों से मिलने-जुलने तथा सार्वजनिक कार्यों में लगाते थे।

राजेन्द्र बाबू का सार्वजनिक जीवन कलकत्ता आने के बाद बिहारी छात्रों को संगठित करने के कार्य से प्रारंभ हुआ। उन्होंने सन् १६०५ ई० में बंग-भंग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और सन् १६०६ ई० में कलकत्ता के कांग्रेस महाधिवेशन में सर्वप्रथम एक स्वयं सेवक के रूप में कार्य किया। सन् १६११ ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के

विधिवत् सदस्य बने । अब तक देश के चोटी के नेताओं—बाल गंगाधर तिलक, पं० मदन मोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपत राय, चितरंजनदास आदि—से उनका परिचय हो चुका था ।

बिहार के चंपारन जिले में अंग्रेज जमींदार नील की खेती कराते थे । इसलिए वे निलहे कहलाते थे । वे वहाँ के किसानों के साथ अमानवीय अत्याचार करते थे । चंपारन के दो किसानों ने सन् १९१६ ई० के लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में नीलहों के अत्याचार के विरोध में प्रस्ताव पारित कराया । १९१७ में गांधीजी उनकी शिकायतों की जाँच के लिए जब चंपारन जा रहे थे तो रात में राजेन्द्र बाबू के घर रुके थे और उन्हे साथ लेकर जाँच करने गए थे । अंग्रेज जमींदारों ने गांधीजी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया । राजेन्द्र बाबू ने बड़े श्रम से उनके अत्याचारों का प्रतिवेदन तैयार किया और तत्कालीन बिहार के गवर्नर को भेजा । अफ्रीका में सत्याग्रह करके गांधीजी उसे सफल सिद्ध कर चुके थे, लेकिन भारत में सर्वप्रथम चंपारन का सत्याग्रह ही भारतीय जनता की दृष्टि से खरा सिद्ध हुआ । राजेन्द्र बाबू गांधीजी के व्यक्तित्व और कार्य-पद्धति से प्रभावित हो उनके अनन्य भक्त बन गए ।

राजेन्द्र बाबू गांधीजी के साथ साबरमती आश्रम गए । बाद में गुजरात के खेड़ा सत्याग्रह को भी गांधीजी और सरदार पटेल के साथ सफल बनाने में अथक कार्य किया और सन् १९२० ई० के असहयोग आंदोलन में तो अपनी जमी-जमाई वकालत को लात ही मार दी । विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावना का विकास करने के लिए उन्होंने पटना के सदाकत आश्रम में बिहार विद्यापीठ विद्यालय की स्थापना की और प्राचार्य का कार्यभार बड़ी कुशलता से संभाल लिया ।

राजेन्द्र बाबू को जन-सेवा या राष्ट्रसेवा के प्रति प्रेरित करने का श्रेय गोखले को जाता है । उन्होंने राजेन्द्र बाबू को लिखे अपने निमंत्रण पत्र में लिखा था : "हो सकता है कि तुम्हारी वकालत खूब चले, तुम बहुत धन पैदा कर सको, शायद तुम्हारे पास भी अमीरों के सब ठाठ जुट जाएँ । किन्तु देश का भी कुछ अधिकार अपने नौजवानों पर होता है । तुम बहुत योग्य हो, तुम्हारे हाथों देश की अतुल सेवा हो सकती है । अतः तुम 'सोसाइटी' में शामिल हो जाओ । सोसाइटी का काम जीवन भर देश-सेवा का व्रत लेनेवाले युवकों का दल बनाना है ।"

गोपालकृष्ण गोखले के इस पत्र का राजेन्द्र बाबू पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। उसके बाद गांधीजी के आह्वान के समय तो उन्हें सोचने की भी आवश्यकता नहीं हुई। वे तुरंत असहयोग आंदोलन में कूद पड़े और जीवन पर्यन्त देश-सेवा के विभिन्न कार्यों और दायित्वों को पूरी क्षमता से निभाते रहे।

प्रथम विश्व-युद्ध १९१४-१८ के समाप्त होते ही अंग्रेजों ने रौलट एक्ट जैसे काले कानून बनाए और जलियाँवाला में उनका विरोध करने के लिए आयोजित निहत्थी सभा पर गोले-गोलियाँ बरसाईं। अंग्रेजों के दमन और अत्याचारों से भारतीय जनमानस उत्तेजित हो उठा। फलत: १९१९-२० में भारतीय राजनीति में विप्लव आ गया, भूचाल आ गया। तब तक गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन की बागडोर अच्छी तरह संभाल ली थी। उन्होंने सत्य, अहिंसा और प्रेम पर आधारित असहयोग आंदोलन शुरू किया। राजेन्द्र बाबू ने बिहार में सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन का नेतृत्व बड़ी कुशलता से किया और वे शीघ्र ही 'बिहार के गांधी' के रूप में विख्यात हो गए। सन् १९२१ ई० में प्रिन्स ऑफ वेल्स के भारत आगमन पर पंजाब में लाला लाजपत राय, उत्तर प्रदेश में पं० मोतीलाल नेहरू और बिहार में राजेन्द्र प्रसाद ने उसके आगमन के विरोध का नेतृत्व किया। १० मार्च १९२२ ई० को गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेस में दो दल हो गए। पहला दल विधान सभाओं में जाकर अंग्रेजों के साथ संवैधानिक लड़ाई जारी रखना चाहता था और दूसरा दल उसका बहिष्कार कर गांधीजी के रचनात्मक कार्यों—चर्खा और खादी का प्रचार, मद्यनिषेध, अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य आदि—को आगे बढ़ाना चाहता था। राजेन्द्र बाबू, सरदार पटेल और राजगोपालाचारी दूसरे दल में थे। राजेन्द्र बाबू ने बिहार में गांधीजी के रचनात्मक कार्यों को खूब आगे बढ़ाया।

सन् १९३० ई० में भारत की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति की जाँच के लिए साइमन के नेतृत्व में एक आयोग आया। इस आयोग में कोई भी प्रतिनिधि भारतीय नहीं था। इसलिए कांग्रेस ने उसका बहिष्कार करने का निर्णय किया। राजेन्द्र बाबू दमा के रोगी थे। पर उन्होंने रोग की परवाह किए बिना उस विरोध में बिहार का नेतृत्व किया और वे सात महीने के लिए बंदी बना लिए गए। दूसरी बार ४ जनवरी, १९३२ ई० को उन्हें अन्य नेताओं के साथ गिरफ्तार कर लिया गया और ६ महीने की सजा

हुई। तीसरी बार व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिलसिले में भी राजेन्द्र बाबू को ६ जनवरी, १९३३ ई० को बंदी बना लिया गया और १५ महीने की सजा सुनाई गई। भीषण दमे के कारण उन्हें पटना अस्पताल में भेज दिया गया।

राजेन्द्र बाबू अभी अस्पताल में ही थे कि संपूर्ण उत्तरी बिहार को भूकंप ने झकझोर दिया, जिमसे हजारों लोग मारे गए और लाखों बेघर हो गए। भूकंप-पीड़ितों की व्यथा और चीख-पुकार सुनकर उनका मन उद्विग्न हो उठा। वे अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बिना सीधे भूकंप-पीड़ितों को राहत पहुँचाने, उनके आँसू पोंछने और उन्हें फिर से बसाने दौड़ पड़े। राजेन्द्र बाबू के इस सेवा-कार्य की सराहना सारे देशवासियों ने की। वे अपनी भूख-प्यास की चिन्ता किए बिना दिन-रात भूकंप-पीड़ितों की सेवा में लगे रहते। गांधीजी ने जनता की आत्मा की आवाज सुनी और राजेंन्द्र बाबू को देशरत्न की उपाधि से स्वयं विभूषित किया। कांग्रेस ने उन्हें सन् १९३४ ई० के बंबई महाधिवेशन का सभापति चुना और देश की जनता ने उनका हार्दिक अभिनंदन किया।

राजेन्द्र बाबू दोबारा लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए। उस समय भी उनका दमा जोरों का था, लेकिन उसकी चिन्ता किए बगैर वे वर्ष भर देश-भर का दौरा करके स्वतंत्रता-संग्राम को संगठित और संचालित करते रहे, जन-जागृति और गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को बढाते रहे। सन् १९३९ ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा जिसमें बिना कांग्रेस की सहमति के भारत को ब्रिटिश सरकार के युद्ध में झोंक दिया, जिसका विरोध पूरे देश ने किया। ८ अगस्त १९४२ ई० को बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक हुई जिसमें गांधीजी ने 'अंग्रेजों, भारत छोड़ो' और 'करो या मरो' का नारा दिया। ब्रिटिश सरकार ने देश के सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। जेल की कोठरियों में कांग्रेस के प्रमुख राजनेता गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल आदि लगभग तीन वर्ष तक बंद रहे।

कारावास-काल में ही राजेन्द्र बाबू ने अपनी 'आत्मकथा' लिखी। लगभग नौ सौ पृष्ठों की 'आत्मकथा' में संपूर्ण स्वतंत्रता आंदोलन का प्रमाणिक इतिहास राजेन्द्र बाबू ने केवल अपनी स्मृति से लिखा। बाद में उन्होंने इसी प्रकार 'डिवाइडेड इंडिया' (खंडित भारत) नाम की पुस्तक भी लिखी। इन दोनों ग्रंथों से राजेन्द्र बाबू की विलक्षण स्मरण-शक्ति और विवेचना-शक्ति का परिचय मिलता है।

१५ अगस्त १९४७ ई० को भारत स्वतंत्र हुआ, लेकिन खंडित होकर। भारत के साथ ही पाकिस्तान का भी अभ्युदय हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही पं० नेहरू के प्रधान-मंत्रित्व में राजेन्द्र बाबू ने खाद्य मंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की और जब संविधान सभा बनाने के लिए संविधान परिषद् संगठित की गई तो सर्वसम्मति से इसके अध्यक्ष निर्वाचित किए गए।

जिस संविधान का निर्माण राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में हुआ था, बाद में उसी ने सर्वसम्मति से उन्हें संप्रभुता-संपन्न भारतीय गणतंत्र के राष्ट्रपति पद पर आसीन किया। उन्होंने २६ जनवरी, १९५० ई० को राष्ट्रपति पद की शपथ ली और लगातार १२ वर्षों तक उसी रूप में कार्य करके १४ मई, १९६२ ई० को राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण किया। इस दीर्घ अवधि में राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री के संबंधों की उन्होंने जो स्वस्थ्य और सौहार्दपूर्ण परंपरा डाली, वह आज अनुकरणीय है।

जब राष्ट्रपति पद से अवकाश ग्रहण करके राजेन्द्र बाबू पटना के सदाकत आश्रम में आकर रहने लगे, तो भी राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू उनसे परामर्श करते। अवकाश ग्रहण करने के बाद वे बहुत कम समय तक जीवित रहे। २८ फरवरी १९६३ ई० को उनका निधन हो गया। निस्संदेह ही उनके दिवंगत होने से गांधीवादी विचारधारा का एक प्रबल समर्थक, जनता का सच्चा प्रतिनिधि और राष्ट्र का कर्मठ एवं ईमानदार नेता उठ गया।

नीचे राजेन्द्र बाबू के चारित्रिक गुणों की झलक देने वाली कतिपय घटनाएँ दी जा रही हैं :

संकोची स्वभाव

रेलवे स्टेशन पर गाड़ी रुकी। एक सीधा-सादा आदमी गाड़ी से उतरा। दुबला-पतला शरीर, साँवला रंग और बड़ी-बड़ी घनी मूँछें। खादी की धोती और सफेद कुरते-टोपी में वह निरा देहाती लग रहा था।

रात्रि के ८ बजे थे। रात्रि के अँधेरे में प्लेटफार्म पर किसी और को नहीं देखकर बिस्तर की गठरी उसने बगल में दबाई और स्टेशन मास्टर के कार्यालय में पहुँचा। स्टेशन मास्टर से उसने अनुरोधपूर्वक कहा, "एक आवश्यक फोन करना है।"

स्टेशन मास्टर ने उसे घूर कर देखा और निरा देहाती समझकर बड़े रौब से बोला, "फोन करना है ? तुम हो कौन ?"

उस देहाती से दिखने वाले व्यक्ति ने अपना परिचय देना चाहा, "राजेन्द्र प्रसाद ···कांग्रेस···।" अभी उसने अपनी बात भी समाप्त नहीं की थी कि स्टेशन मास्टर ने बीच में ही डांट दिया और बोला, "जा जाओ, जाओ। राजेन्द्र प्रसाद जी नहीं आए आज।"

और, उसने उस आदमी को फोन करने नहीं दिया। वह आदमी इतना संकोची था कि उसने पुनः स्टेशन मास्टर को यह नहीं बताया कि जिस राजेन्द्र प्रसाद के नहीं आने की बात उसने कही, वह तो उसके सामने ही खड़ा है।

जन-सेवा के लिए तत्पर

एक बार राजेन्द्र बाबू दरभंगा से रेल द्वारा पटना आ रहे थे। गाड़ी सोनपुर स्टेशन पर रुकी। वहाँ से उन्हें पहलेजा घाट जाना था, जहाँ से स्टीमर द्वारा गंगा नदी पार कर पटना जाते। सोनपुर एक बड़ा जंक्शन है, जहाँ चारों ओर से गाड़ियाँ आती हैं। छपरा की ओर से एक गाड़ी आकर रुकी। ठेठ जेठ का महीना था और सूरज दिन के तीसरे पहर भी आग के शोले बरसा रहा था। छपरा से आनेवाली गाड़ी भीड़ से खचाखच भरी थी। उस गाड़ी से जितने लोग अन्य स्थान जाने के लिए उतरे इससे कहीं अधिक लोग गाड़ी में घुस गए। गाड़ी एक्सप्रेस थी और पाँच-दस मिनट बाद चल देती। कुछ स्त्री और बाल-यात्री पानी-पानी चिल्ला रहे थे, पर वहाँ रेलवे का कोई पानी-पाँडे नहीं था। किसी ने उनकी चीख-पुकार पर ध्यान नहीं दिया। राजेन्द्र बाबू उनकी गिड़-गिड़ाहट से द्रवीभूत हो गए और झट लोटा उठाकर दौड़ पड़े। नल से लोटा भर-भरकर यात्रियों को तब तक पानी पिलाते रहे, जब तक गाड़ी रवाना नहीं हो गई। इसी बीच उनकी गाड़ी भी चल चुकी थी। दौड़कर डिब्बे में सवार तो हो गए, लेकिन दमे के कारण उनका बुरा हाल था।

हिन्दी-प्रेम

राजेन्द्र बाबू हिन्दी के अनन्य प्रेमी थे। उन्होंने बचपन में हिन्दी नहीं, उर्दू पढ़ी

थी। लेकिन आई० ए० पास करने के बाद जब हिन्दी की महत्ता और उपयोगिता का उनको एहसास हुआ तो बी० ए० में हिन्दी विषय के लिए फार्म भरा। उनके प्राध्यापकों ने बताया, "विश्वविद्यालय हिन्दी विषय लेकर मैट्रिक और आई० ए० की परीक्षाएं पास करने के बाद ही बी० ए० में हिन्दी विषय लेने की तुम्हें अनुमति देगा।" साथ ही समझाया, बी० ए० की हिन्दी काफी कठिन होती है, तुम उसे पास नहीं कर सकते। लेकिन राजेन्द्र बाबू अपने संकल्प पर अटल रहे। विश्वविद्यालय ने उनकी तेजस्विता को ध्यान में रखकर अनुमति दी और वे कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विषय की परीक्षा में भी प्रथम आए।

हिन्दी के प्रति राजेन्द्र बाबू का प्रेम निरंतर बढ़ता गया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा अन्य प्रादेशिक हिन्दी के साहित्य सम्मेलनों और हिन्दी सेवी संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी प्रचार-प्रसार को नई दिशा प्रदान करते रहे। अनेक विश्वविद्यालयों के दीक्षांत समारोहों में उन्होंने हिन्दी में ही विद्वतापूर्ण भाषण दिए, जिनकी लोगों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। महात्मा गांधी के शब्दों में वे एक कुशल 'शब्द-शिल्पी' थे।

राजेन्द्र बाबू का दृढ़ विश्वास था कि जब तक भारत की शिक्षा और शासन के कार्य अंग्रेजी में चलते रहेंगे, तब तक इस देश की स्वतंत्रता पर आम जनता का अधिकार नहीं होगा। इसीलिए संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का गौरव दिलाने के लिए उन्होंने रचनात्मक भूमिका अदा की।

संविधान सभा के सभी कार्य संपन्न करके जब वे पटना गए, तब डा० सच्चिदानंद सिन्हा ने उनसे पूछा, "आप लोगों ने हिन्दी को राजभाषा क्यों बना दिया?"

छूटते ही राजेन्द्र बाबू ने जवाब दिया, "अगर भारत की भाषाएँ अंग्रेजी का स्थान नहीं ले सकती तो भारत को स्वतंत्र कराने की ऐसी आतुरता ही क्या थी?"

सतर्कता

एक बार राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद दिल्ली विश्वविद्यालय में आमंत्रित थे। भोजन के बाद लोग उनसे हस्ताक्षर माँग रहे थे। जो भी कोई संदेश उनके पास लिख [illegible] जाता, उसी पर वे हस्ताक्षर कर देते। एक चुलबुली लड़की ने इस अवसर

उठाना चाहा। उसने राजेन्द्र बाबू को छकाने की सोची। उसने कापी पर लिखा :

"मेरी सरकार बड़ी खुशी के साथ तुम्हें स्वर्ग का गवर्नर नियुक्त करती है।"

और उस पर उनके हस्ताक्षर कराने गई। हस्ताक्षर लेने के बाद उसने अपनी कापी देखी तो अवाक् रह गई।

उस पर लिखा था :

"मेरी सरकार खुशी के साथ तुम्हें स्वर्ग का गवर्नर नियुक्त करती है, मगर अभी वहाँ जगह खाली नहीं है। इसलिए तुम्हें फिलहाल नरक का गवर्नर नियुक्त किया जाता है।"

(हस्ताक्षर—राजेन्द्र प्रसाद)

विदेह राष्ट्रपति

राष्ट्रपति भवन बाहर से जितना विशाल, भव्य और आकर्षक दिखता है, उससे कहीं अधिक अंदर से विस्तृत, वैभव-संपन्न और चित्ताकर्षक है। प्रवेश करते समय विशालता और जगह-जगह बंदूकधारी संतरियों को देखकर स्तंभित होना स्वाभाविक है। अंदर आने पर तो दर्शक ठगा-सा, भ्रमा-सा रह जाता है। लगातार बारह वर्ष तक राजेन्द्र बाबू उसमें विदेह बनकर रहे, उसके वैभव से अलिप्त रहे। उन्होंने कर्मयोगी तपस्वी का-सा जीवन बिताया। राजेन्द्र बाबू का नाम लेते ही राजर्षि जनक का स्मरण अनायास हो जाता है।

राष्ट्रपति भवन का दरवाज़ा राजेन्द्र बाबू ने सबके लिए खोल रखा था। यही नहीं, उनके हृदय का द्वार भी सभी के लिए उन्मुक्त था। राष्ट्रपति होने के बाद भी वे जनता के उतने ही समीप बने रहे, जितने पहले थे। उनसे मिलने दूर-दूर से लोग आते और मिलकर ही जाते। संतरियों को स्पष्ट आदेश था कि वे मिलने-भेंट करने वालों को रोकें-टोकें नहीं।

एक बार एक निपट देहाती राजेन्द्र बाबू के दर्शनार्थ आया। श्रद्धापूरित भावना से वह राष्ट्रपति भवन के सभी दरवाज़ों को पार करता उस कमरे के पास पहुँचा, जिसके अंदर राजेन्द्र बाबू बैठे कुछ पढ़-लिख रहे थे। संतरी ने कमरे में जाने को तो कहा लेकिन यह नहीं बताया कि अंदर राजेन्द्र बाबू ही बैठे हैं। राजेन्द्र बाबू ने बड़ी गरमजोशी से

देहाती सज्जन को गले लगाया और अँकवार में कस लिया। फिर बैठाकर बड़ी देर तक घर-परिवार गाँव-जवार की बातें की। उनकी कठिनाइयों और दिल्ली आने के उद्देश्य आदि भी पूछे। उसने भी राजेन्द्र बाबू से उनके घर-परिवार के कुशल-क्षेम पूछे। जब वह कमरे से बाहर आया तो फिर उसने राजेन्द्र बाबू से मिलने की इच्छा संतरी से प्रकट की। संतरी उस सज्जन की भूल समझ गया। उसने कहा, "आप अंदर राजेन्द्र बाबू से ही तो घुल-मिलकर बातें कर रहे थे।" राजेन्द्र बाबू दरवाज़े पर खड़े मुस्करा रहे थे। देहाती सज्जन अंदर जाने लगे और राजेन्द्र बाबू से टकरा गए। उन्होंने पैर छूकर माफी माँगनी चाही, लेकिन ऐसा करने से बीच में ही रोक कर उन्हें राजेन्द्र बाबू ने पुनः हृदय से लगा लिया। दोनों भावाभिभूत और गद्‌गद थे।

—शशिकुमार शर्मा

प्रश्न-अभ्यास

१. रात को जल्दी सो जाने और प्रातः चार बजे ही उठ जाने से राजेन्द्र बाबू को क्या लाभ हुए?
२. राजेन्द्र बाबू की अद्‌भुत प्रतिभा, तीव्र स्मरण-शक्ति एवं कुशाग्र बुद्धि के क्या प्रमाण हैं?
३. राजेन्द्र बाबू के किस कार्य से प्रसन्न होकर गांधीजी ने उन्हें 'देशरत्न' की उपाधि से विभूषित किया?
४. भारत की सांस्कृतिक परंपरा के रक्षक के रूप में राजेन्द्र बाबू का वर्णन करो।
५. निपट देहात से उठकर अपने किन गुणों के बल पर वे राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए?
६. संकलित संस्मरणों में से जो संस्मरण तुम्हें अच्छा लगे, उसका संक्षेप में वर्णन करो।
७. गोपाल कृष्ण गोखले ने किस उद्देश्य से राजेन्द्र बाबू को पत्र लिखा? उन्होंने उनको जो उत्तर भेजा होगा उसका अपने अनुमान से वर्णन करो।
८. राजेन्द्र बाबू का हिन्दी-प्रेम उनके किस कार्य से सबसे अधिक प्रकट होता है?
   (क) वे लोगों से प्रायः हिन्दी में ही बातचीत करना पसंद करते थे।

(ख) अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान होने पर भी उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' हिन्दी में लिखी ।

(ग) आई. ए. तक हिन्दी नहीं पढ़ने पर भी बी.ए. की परीक्षा में हिन्दी रखी ।

(घ) संविधान मे हिन्दी को राजभाषा का गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में रचनात्मक भूमिका अदा की ।

(ङ) वे आजीवन हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं हिन्दी-सेवी संस्थाओं से जुड़े रहे ।

(च) अनेक विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी का वातावरण रहने पर भी उन्होंने अनेक दीक्षांत भाषण हिन्दी में दिए ।

५.

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद भारत के प्रमुख राष्ट्रवादी नेता थे। उन्होंने बहुत छोटी उम्र से ही देश के नवजागरण के काम में भाग लेना आरम्भ कर दिया था और अपनी लेखनी, वाणी तथा संगठन-शक्ति के सहारे देश की जनता के सभी वर्गों को स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। सन् १९४२ ई० में जब गांधीजी के नेतृत्व में 'भारत छोड़ो' आंदोलन आरम्भ हुआ, मौलाना आज़ाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। भारत की स्वतंत्रता के बाद भी नए राष्ट्र को धर्मनिरपेक्षता के आधार पर संगठित करने के कार्य में उनका योगदान बड़ा महत्त्वपूर्ण था।

मौलाना आज़ाद उच्च वंश-परंपरा के व्यक्ति थे। उनका जन्म सन् १८८८ ई० में मक्का में हुआ था। उनके पूर्वज शेख जमालुद्दीन मुगल सम्राट अकबर के दरबार में सम्मानित हो चुके थे। सन् १८५७ ई० के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के बाद देश में जो दमनकारी वातावरण पैदा हो गया था, उसे देखते हुए अबुल कलाम के पिता मौलाना खैरुद्दीन भारत छोड़कर मक्का जा बसे थे। वहीं उन्होंने मदीना के प्रसिद्ध विद्वान शेख मुहम्मद जहर की कन्या से विवाह किया था। इस प्रकार विद्याध्ययन अबुल कलाम आजाद को विरासत में मिली थी।

मौलाना खैरुद्दीन धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। उन्हें धर्मशास्त्र का अगाध ज्ञान था। उन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखी थीं। पश्चिमी एशिया के साथ-साथ भारत में रहने वाले मुसलमानों में भी उनके अनेक अनुयायी थे। बालक अबुल कलाम के जन्म के कुछ वर्ष बाद मौलाना खैरुद्दीन को एक दुर्घटना में चोट लग गई। जब हड्डी अच्छी तरह



मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

नहीं जुड़ सकी तो लोगों ने उन्हें कलकत्ता जाकर चिकित्सा कराने का परामर्श दिया। मौलाना कलकत्ता आ गए और अपने अनुयायियों के आग्रह पर वहीं रुक गए। कुछ समय बाद उन्होंने अबुल कलाम सहित अपने परिवार को भी भारत बुला लिया।

अबुल कलाम के पिता आधुनिक शिक्षा को बहुत हानिकारक समझते थे। उनका विचार था कि इससे बालक धार्मिक विचारों से विमुख हो जाता है। अतः उन्होंने अबुल कलाम को स्वयं घर पर शिक्षा देना आरम्भ किया। कुछ समय के बाद विभिन्न विषय पढ़ाने के लिए अलग-अलग अध्यापक रखे गए। प्राचीन ढंग की इस्लामी शिक्षा में बालक २५ वर्ष की उम्र तक पढ़ता था और इस बीच विभिन्न विषयों का पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेता था। इसी अवधि में उसे विद्यार्थियों को पढ़ाकर यह भी सिद्ध करना होता था कि वास्तव में वह पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर चुका है। अबुल कलाम बड़े परिश्रमी और मेहनती छात्र थे। उन्होंने १६ वर्ष की उम्र में ही यह अध्ययन पूरा कर लिया। इसी उम्र में उन्होंने विद्यार्थियों को दर्शनशास्त्र, गणित और तर्कशास्त्र जैसे विषय पढ़ाकर अपनी योग्यता प्रमाणित भी कर दी।

उनकी सारी शिक्षा धार्मिक वातावरण में पुरानी परंपरा के अनुसार हुई थी। इस बीच उन्हें सर सैयद अहमद खाँ के कुछ लेख पढ़ने को मिले। इन लेखों में रूढ़िवादी धार्मिक विचारों का विरोध किया गया था। इससे अबुल कलाम के विचारों में भी परिवर्तन आरम्भ हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि आज के युग में केवल पुराने ढंग की शिक्षा से काम नहीं चल सकता। आज तो वही व्यक्ति वास्तव में शिक्षित माना जाएगा जिसे आधुनिक विज्ञान और समाजशास्त्र का भी पूरा ज्ञान हो। इन विषयों की पुस्तकें पढ़ने के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक था। अतः एक मित्र की सहायता से अंग्रेजी वर्णमाला सीखकर फिर शब्द-कोश और समाचार-पत्रों के जरिए उन्होंने थोड़े समय में ही अंग्रेजी सीख ली और विभिन्न विषयों के गंभीर ग्रंथों का अध्ययन करने में समर्थ हो गए। पढ़ने के लिए एक दिन भी किसी विद्यालय में गए बिना अपने अध्यवसाय से कोई व्यक्ति कितनी योग्यता प्राप्त कर सकता है, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद इसके

उदाहरण है। यह स्मरण रखने की बात है कि जहाँ मौलाना आज़ाद सर सैयद अहमद के उदार धार्मिक विचारो से प्रभावित हुए, वहाँ सैयद के अंग्रेजी समर्थक विचारों के वे प्रबल विरोधी भी थे।

ज्ञान के नए स्रोतों के संपर्क में आने पर अबुल कलाम के विचारों में संघर्ष आरम्भ हुआ। परिवार में चली आ रही परंपरा से वे संतुष्ट नही रह सके। मुसलमानों के विभिन्न वर्गों में प्रचलित भेदभाव और अलग-अलग धर्मावलंबियों के बीच का वैमनस्य उनकी समझ में नहीं आया। मौलाना ने निश्चय किया कि वे अपना मार्ग स्वयं बनाएँगे। वे अपने परिवार की परम्परा और लालन-पालन के आरम्भिक सस्कारों से आज़ाद हो गए। इसी समय उन्होंने अपने नाम के साथ 'आज़ाद' लगाने का निश्चय किया और मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' बन गए।

यह भारत के राष्ट्रीय पुनर्जागरण का समय था। देश में क्रांतिकारी आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था और बंगाल इसका प्रमुख केन्द्र था। अंग्रेज हिन्दू और मुसलमानों के बीच में भेदभाव पैदा करके इस आंदोलन को कमजोर करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से सन् १९०५ ई० में उन्होंने बंगाल के दो टुकड़े करके उसे हिन्दू और मुसलिम बहुमत वाले दो प्रान्त बना देने का निश्चय किया था। लोगों ने इसका ज़ोरदार विरोध किया। इसी बीच मौलाना आज़ाद बंगाल के क्रांतिकारियों के संपर्क में आए और उन्होंने उनके काम में सहायता पहुँचाई। इन्हीं दिनों मौलाना को इराक, मिस्र, सीरिया, तुर्की और फ्रांस की यात्रा का भी अवसर मिला। उनका इन देशों के राष्ट्रवादियों से संपर्क हुआ और इससे उन्हें अपने राजनीतिक विचार स्थिर करने में सहायता मिली।

स्वदेश लौटने पर मौलाना आज़ाद ने अपने राष्ट्रीय विचारों का भारतवासियों विशेषत: मुसलमानों में प्रचार करने के लिए कलकत्ता में प्रेस की स्थापना की और सन् १९१२ ई० में यहाँ से आधुनिक ढंग की उर्दू साप्ताहिक पत्रिका 'अलहिलाल' प्रकाशित करना आरंभ किया। इससे पहले भी विभिन्न समाचार-पत्रों में वे लेखन कार्य करके पत्रकारिता का अनुभव प्राप्त कर चुके थे।

अपनी रूप-सज्जा और नवीन विचारों के कारण यह पत्र बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गया। दो वर्षों के भीतर ही इसकी २६,००० प्रतियाँ प्रति सप्ताह बिकने लगी थी, जो उर्दू पत्रों के इतिहास में उस समय एक आश्चर्यजनक बात थी। इस समय तक मुसलमानों का नेतृत्व जिन लोगों के हाथों में था, वे यह मानते थे कि मुसलमानों का हित राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रहकर अंग्रेजों का साथ देने में है। मौलाना आज़ाद ने 'अलहिलाल' के माध्यम से इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। स्वभावतः पुराने विचारों के व्यक्तियों के साथ-साथ अंग्रेज सरकार भी इस कार्य से मौलाना के विरुद्ध हो गई। 'अलहिलाल' तत्कालीन सरकार की आँखों में खटक गया और उसने पत्र से दो बार जमानत माँगकर उसे जब्त कर लिया। इस बीच प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१८) आरंभ हो चुका था। सरकार ने भारत रक्षा कानून के अंतर्गत 'अलहिलाल' पत्र को ही जब्त कर लिया। पर मौलाना इस तरह हार मानने वाले व्यक्ति न थे। उन्होंने 'अलबलाक' नामक नया पत्र प्रकाशित करके अपने उग्र विचारों का प्रचार जारी रखा। इससे अंग्रेज सरकार कुपित हो उठी। अप्रैल १९१६ ई० में मौलाना आज़ाद को कलकत्ता से निष्कासित कर दिया गया। पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश और बंबई में भी उनके प्रवेश पर रोक लगा दी गई। इसके ६ मास बाद ही वे बिहार के राँची नामक स्थान में नजरबंद कर दिए गए। वहाँ से वे जनवरी, १९२० में मुक्त हो सके।

इस बीच भारत की राजनीति में बड़े परिवर्तन हो चुके थे। दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी वापस आ चुके थे और उन्होंने देश के राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर अपने हाथों में ले ली थी। प्रथम विश्व-युद्ध समाप्त हो चुका था। युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजों ने तुर्की के खलीफा के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उससे भारत के मुसलमानों में भी अंग्रेजों के विरुद्ध क्षोभ बढ़ रहा था। गांधीजी ने इस अवसर का उपयोग किया और खिलाफत आंदोलन को राष्ट्रीय आंदोलन का ही एक अंग बनाने में वे सफल हुए। १९२० में नजरबंदी से रिहा होने पर मौलाना आज़ाद दिल्ली में गांधीजी से मिले। गांधीजी ने खिलाफत के प्रश्न पर अंग्रेज सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन प्रारंभ करने का जो प्रस्ताव रखा था, मौलाना ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया और वे

तभी से गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा में सम्मिलित हो गए।

देश का वातावरण ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध होता जा रहा था। असहयोग आंदोलन जोर पकड़ता गया और अन्य नेताओं के साथ-साथ मौलाना आज़ाद भी जेल में बंद कर दिए गए। सन् १९२३ ई० में जब वे रिहा हुए तो देश ने अखिल भारतीय स्तर के राष्ट्रीय नेता के रूप में उनका स्वागत किया। कांग्रेस के सन् १९२३ ई० में हुए कलकत्ता अधिवेशन के वे सभापति चुने गए। तब उनकी उम्र केवल ३५ वर्ष थी। इतनी कम उम्र में अभी तक कोई भी कांग्रेस का अध्यक्ष नहीं बना था। अब तो मौलाना की पूरी शक्ति देश के स्वतंत्रता-संग्राम में ही लग गई। गांधीजी ने नमक सत्याग्रह आरंभ किया। मौलाना फिर जेल में डाल दिए गए। लंदन का गोलमेज सम्मेलन असफल हुआ। गांधीजी भारत लौटते ही गिरफ्तार कर लिए गए। मौलाना आज़ाद भी गिरफ्तार कर लिए गए। मौलाना की अंतिम किन्तु सबसे लंबी जेल-यात्रा १९४२ से १९४५ ई० तक की थी। सन् १९४२ ई० में जब देश ने गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता के लिए अंतिम निर्णायक संग्राम छेड़ा और 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' का नारा लगाया, उस समय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ही कांग्रेस के अध्यक्ष थे। ८ अगस्त, १९४२ को बंबई में अन्य नेताओं के साथ वे भी गिरफ्तार किए गए और सन् १९४५ ई० तक जेल में बंद रहे।

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति पर जब अंग्रेजों के लिए भारत में टिका रहना कठिन हो गया और वे देश की बागडोर भारतवासियों को सौंपने के लिए वार्ताएँ चलाने लगे तो इस अवसर पर भी मौलाना आज़ाद ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतंत्र हुआ और केन्द्र में जो प्रथम सरकार बनी उसमें मौलाना आज़ाद प्रथम शिक्षा-मंत्री के रूप में सम्मिलित हुए और जीवन पर्यन्त उस पद पर कार्य करते रहे। २२ फरवरी १९५८ को उनका निधन हो गया। शिक्षा-मंत्रित्व काल में मौलाना आज़ाद ने देश की शिक्षा और सांस्कृतिक कार्यों को स्वतंत्र भारत के अनुरूप नई दिशा प्रदान की।

मौलाना आज़ाद ने राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख रूप से भाग लेने के साथ-साथ

उर्दू भाषा और साहित्य की भी बड़ी सेवा की। वे इस भाषा के प्रथम कोटि के विद्वान और लेखक थे। उन्होंने उर्दू को नई प्रभावकारी शैली प्रदान की। वे बड़े कुशल वक्ता भी थे। उनके भाषणों में तर्क और विद्वत्ता का समावेश रहता था। गभीर विषय को साधारण भाषा में समझाने की उनमें असाधारण क्षमता थी।

मौलाना आज़ाद में पुराने और नए विचारों का अद्भुत सामंजस्य था। वे हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रबल समर्थक थे। वे देश-सेवा और इस्लाम धर्म की सेवा दोनों को एक-दूसरे का पूरक मानते थे। जब बहुत-से व्यक्ति ब्रिटिश सरकार के कुचक्र के शिकार बनकर सांप्रदायिक विचारों के पीछे भागने लगे थे, मौलाना आज़ाद ने सदा राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संघर्ष में राष्ट्रीय जीवन की मुख्य धारा का समर्थन किया। वे वास्तव में भारत की मिली-जुली संस्कृति के सर्वोत्तम उदाहरण थे।

—रामजन्म शर्मा

प्रश्न-अभ्यास

१ मौलाना अबुलकलाम आजाद के पूर्वजों को भारत छोडकर मक्का क्यों जाना पड़ा? उनका परिवार फिर भारत कैसे वापस लौटा?

२. अबुलकलाम आजाद का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

३. मौलाना अबुलकलाम आजाद ने किन विषयों की शिक्षा प्राप्त की और कैसे? उन्होंने अंग्रेजी क्यों और कैसे सीखी? उन्होंने अपने नाम के साथ 'आज़ाद' क्यो लिखना शुरू किया?

४. सर सैयद अहमद की किन बातों का आज़ाद पर प्रभाव पड़ा? उन्होंने अहमद की किस बात का विरोध किया?

५. मौलाना आज़ाद कब कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए?

६. मौलाना आज़ाद का गांधीजी से कब संपर्क हुआ? दोनों के मिलन से भारतीय स्वतंत्रता-

संग्राम को क्या बल मिला ?

७. खिलाफत आंदोलन क्यों चलाया गया ? गांधीजी ने इसका समर्थन क्यों किया ? उसका परिणाम क्या हुआ ?

८. उर्दू भाषा के संवर्धन और विकास के लिए आज़ाद ने क्या कार्य किए ?

९. पाठ के आधार पर सिद्ध करो कि आजाद भारत की मिली-जुली संस्कृति के उदाहरण थे।

६.

पंडित जवाहरलाल नेहरू

आधुनिक भारत के निर्माताओं में पंडित जवाहरलाल नेहरू का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देश के स्वतंत्रता-संग्राम को सफल बनाने में उन्होंने अनुपम योग दिया। हमारे राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संघर्ष में वे जनता के प्रेरणा-स्रोत थे। इस देश के युवक उन्हें अपना हृदय-सम्राट मानते थे। बच्चों के 'चाचा नेहरू' तो वे सदा ही बने रहे।

सार्वजनिक जीवन-कार्यों में नेहरूजी का उत्साह लोगों में नया जीवन फूंक देता था। उनके विचारों में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत और आधुनिक ज्ञान का अद्भुत सामंजस्य था। वे विद्वान् थे, देश-भक्त, थे, सत्य-प्रेमी थे, और अन्याय के प्रबल विरोधी थे।

जनतंत्र में नेहरूजी की गहरी आस्था थी। समाज के निर्बल और पिछड़े वर्गों के वे हिमायती थे और मानव-मात्र की पीड़ा से दुखी होते थे। समाजवादी और प्रगतिशील विचारों का उन्होंने सदा समर्थन किया। ऊँचे आदर्शों के लिए वे अपना सर्वस्व त्याग देने को तत्पर रहते थे। राष्ट्रपिता गांधीजी के वे सच्चे अनुयायी और सहयोगी थे। बापू भी उन्हें हृदय से चाहते थे और उन्होंने उन्हें अपना राजनैतिक उत्तराधिकारी घोषित किया था।

नेहरूजी का हृदय अत्यंत विशाल और उदार था। वे विश्व-मानवता में विश्वास रखते थे। संसार को उन्होंने सदा एक परिवार समझा। उनका विश्वास था कि कोई राष्ट्र आज अलग नहीं रह सकता। संसार के किसी भी कोने में यदि दमन या अत्याचार की कोई घटना घटती तो उनका खून खौलने लगता था। यह उनका ही प्रभाव था कि स्वतंत्रता संघर्ष के समय ही भारत ने आधुनिक विश्व के मानचित्र में अपना विशेष



पं० जवाहरलाल नेहरू

स्थान बना लिया था।

सन् १६४७ में जब भारत स्वतंत्र हुआ, नए राष्ट्र को संगठित करने और उसे नवीन आर्थिक और वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का भार नेहरूजी के ही कंधों पर आया। वे १६४७ से १६६४ तक भारत के प्रधान मंत्री रहे। इस बीच राष्ट्र की जो सुदृढ़ नींव उन्होंने डाली, उसी के ऊपर आज हमारी स्वतंत्रता और लोकतंत्र का भवन गौरव के साथ खड़ा है।

जवाहरलाल नेहरू का जन्म १४ नवम्बर १८८६ ई० को उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद में हुआ था। पिता पंडित मोतीलाल नेहरू अपने समय में बड़े संपन्न और प्रसिद्ध वकील थे। जवाहरलाल का बचपन बड़े आराम से बीता। किसी चीज़ का अभाव नहीं था। घर में पढ़ाने के लिए नियुक्त अंग्रेज शिक्षक ने उनके भीतर बचपन में ही विज्ञान के प्रति उत्कंठा उत्पन्न कर दी थी। माता स्वरूपरानी धार्मिक विचारों की महिला थी। उनकी स्नेहपूर्ण छत्रछाया में जवाहरलाल पर भारत की प्राचीन विरासत का भी प्रभाव पड़ा। पं० मोतीलाल के एक मुंशी थे—मुबारक अली। उनके परिवार को १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया था। मुबारक अली जवाहरलाल को इस संग्राम की कहानियाँ सुनाया करते थे। तभी से बालक नेहरू के अदर देश की स्वतंत्रता की भावना भी जागरित होने लगी थी।

शिक्षा प्राप्त करने के लिए जवाहरलाल को १६०५ ई० में इंगलैण्ड भेजा गया। उस समय उनकी उम्र लगभग १५ वर्ष की थी। वहाँ रहकर उन्होंने विज्ञान और कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त की। इंग्लैंड के प्रवास का जवाहरलाल के जीवन पर कई दृष्टियों से बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्होंने विभिन्न विषयों के ग्रंथों का अध्ययन किया और वे उदार तथा प्रगतिशील विचारों से परिचित हुए। संसार के विभिन्न देशों में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलनों की ओर वे आकृष्ट हुए और तभी अपने देश की राजनीति के प्रति भी उनकी रुचि बढ़ी।

सन् १६१२ में नेहरूजी भारत आए और इलाहाबाद में वकालत करने लगे। उसी वर्ष वे कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में भी सम्मिलित हुए। लोकमान्य तिलक तब

जेल में थे और कांग्रेस संगठन नरम विचार के व्यक्तियों के प्रभाव में था। कुछ समय बाद गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे और १९१६ में पहली बार नेहरूजी की उनसे भेंट हुई। गांधीजी के आगमन से देश की राजनीति में नए नक्षत्र का उदय हुआ। उनकी शांत प्रकृति और अहिंसक व्यवहार के पीछे जो महान् शक्ति छिपी हुई थी, उसे पहचानने में जवाहरलाल को देर नहीं लगी और वे गांधीजी के अनुयायी और अनन्य सहयोगी बन गए।

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१९१८) की समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार ने भारत-वासियों की स्वतंत्रता की भावनाओं का दमन करने के लिए 'रौलेट एक्ट' पास किया। गांधीजी के नेतृत्व में इसका विरोध करने के लिए जवाहरलाल भी आगे आए। इसी बीच पंजाब में 'जलियाँवाला हत्या कांड' हुआ और गांधीजी ने असहयोग आंदोलन छेड़ दिया। नेहरूजी ने वकालत को तिलांजलि दे दी और पूरी शक्ति से स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े। 'प्रिंस आफ वेल्स' के भारत आगमन का बहिष्कार करने के सिलसिले में १९२१ में वे गिरफ्तार कर लिए गए। इसके बाद तो हर आंदोलन में गिरफ्तारी का लम्बा सिलसिला चला। स्वतंत्रता-संघर्ष में वे आठ बार गिरफ्तार किए गए। अंतिम गिरफ्तारी 'भारत छोड़ो' आंदोलन के सिलसिले में १९४२ में हुई थी। ये सब गिरफ्तारियाँ साधारण नहीं थी। अनेक बार उन्हें बड़ी कष्टदायक स्थितियों में रहना पड़ा। १९२८ में साइमन कमीशन का बहिष्कार करते समय उन पर पुलिस की लाठियों से भी प्रहार किया गया।

पंडित मोतीलाल नेहरू पहले नरम विचारधारा के व्यक्ति थे। अपने पुत्र जवाहर के प्रभाव से वे भी गांधीजी के अनुयायी बनकर आंदोलन में सम्मिलित हो गए। नेहरूजी की माता स्वरूपरानी तथा उनकी पत्नी कमला नेहरू ने भी आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया। इस प्रकार उनका सारा परिवार ही भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल था।

नेहरूजी का आरम्भिक जीवन नगरों में ही बीता था, पर शीघ्र ही ये समझ गए कि भारत गाँवों में बसता है और गाँव के किसानों की स्थिति में सुधार के बिना देश

आगे नही बढ़ सकता । भीषण गर्मियों में भी उन्होंने उत्तर प्रदेश के देहातों का दौरा किया और किसानों की दुर्दशा अपनी आँखों से देखी । इन यात्राओं से उनके और देश की जनता के बीच प्यार का जो संबंध बना उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है ।

स्वतंत्रता-संग्राम में नेहरूजी प्रगतिशील विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे । उनके प्रभाव से कांग्रेस के कार्यकर्ताओं तथा राष्ट्र-सेवियों में भी प्रगतिशील विचारधारा का प्रसार होता था । उनके प्रयत्न से ही कांग्रेस ने १९२६ में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव स्वीकार किया । १९२९ में जब देश ने पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति अपना लक्ष्य घोषित किया, उस समय जवाहरलाल ही कांग्रेस के अध्यक्ष थे ।

पंडित नेहरू बड़े ही निर्भीक, स्पष्टवादी, स्वतंत्रता-संग्राम के महान् सेनानी थे । वे प्रगतिशील विचार-धारा के समर्थक थे । जनतांत्रिक समाजवादी सामाजिक रचना को वे देश के उत्थान के लिए आवश्यक मानते थे । वे ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध खुले शब्दों में अपने विचार प्रकट करते थे । एक उदाहरण उल्लेखनीय है— अक्तूबर १९४० में पंडित जी ने जो बयान दिया, वह बड़ा ही ओजस्वी और महत्त्वपूर्ण था :

"श्रीमन् ! मैं आपके सामने एक व्यक्ति के रूप में पेश किया गया हूँ, जिसने राज्य के खिलाफ़ जुर्म किया है । जिस सरकार के खिलाफ मैंने जुर्म किया है, आप उसके प्रतीक हैं । किन्तु मैं भी केवल व्यक्ति नहीं हूँ, व्यक्ति से कुछ बडी चीज हूँ । मैं आज के युग का प्रतीक हूँ, भारत की राष्ट्रीयता का प्रतीक हूँ, मैं उस देश का प्रतीक हूँ, जो गुलामी की जंजीर तोड़कर ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होना चाहता है । आप इस मुगालते में न रहें कि आप मेरा मुकदमा देख रहें हें या मुझे सजा देने जा रहे हैं । आप मुकदमा भारत के करोड़ों निवासियों का देख रहे हैं और सजा भी आप उन्हें ही देंगे । मेरा ख्याल है, यह जिम्मेदारी किसी अहंकारी साम्राज्य के लिए भी भारी पड़ेगी ।" मजिस्ट्रेट ने नेहरू जी पर चार साल कैद की सजा ठोक दी ।

स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में भी नेहरूजी स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए चिन्तित रहते थे । इस दृष्टि से उन्होंने 'कांग्रेस योजना समिति' का गठन किया और लोगों का ध्यान देश के आर्थिक उत्थान के प्रश्नों की ओर भी खीचा । स्वतंत्र भारत में एक के बाद

एक पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत विकास के जो काम हो रहे हैं, उनकी नींव नेहरूजी ने स्वतंत्रता के पहले ही डाल दी थी।

पराधीन भारत में ५०० से अधिक देशी रियासतें थीं, जहाँ जनता पर बहुत अधिक अत्याचार होते थे। नेहरूजी का ध्यान इस ओर भी गया और राजाओं और नवाबों के विरोध की परवाह न करके उन्होंने इन रियासतों की जनता को भी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संगठित किया। इन प्रयत्नों से पूरे भारत में इतनी जागृति उत्पन्न हो गई थी कि भारत के स्वतंत्र होते ही ये देशी राज्य भी देश की मुख्यधारा में सम्मिलित हो गए।

सन् १९४७ ई० में स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय भारत के सामने अनेक समस्याएँ थीं। विदेशी दासता के कारण देश आर्थिक दृष्टि से खोखला हो चुका था। विभाजन से प्रभावित लाखों विस्थापितों को फिर से बसाने का प्रश्न उपस्थित था। सांप्रदायिकता की आग शांत करनी थी। देश का आत्मविश्वास जगाना था और संसार के सामने भारत की प्रतिष्ठा फिर से स्थापित करनी थी। १५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री बनने के बाद से लेकर अपने अंतिम समय तक नेहरूजी इन समस्याओं से जूझते रहे। किसी मोर्चे पर वे जल्दी सफल हुए और कहीं-कहीं समस्याएँ जटिल होने के कारण उतनी सफलता नहीं भी मिली। पर एक पक्की नींव, उन्होंने हर क्षेत्र में डाली। हर आँख से निकलने वाले आँसू को पोछ सकें, यही उनकी आकांक्षा थी। १४ अगस्त, १९४७ की आधी रात को स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अपने भाषण में उन्होंने कहा था, "हो सकता है, यह हमारी सामर्थ्य के बाहर हो, लेकिन जब तक आँसू और यातना का चिह्न भी रहेगा, तब तक हमारे कार्यों की इति—श्री न होगी।"

नेहरूजी का विश्वास था कि भारत की जनता के सभी वर्गों की उन्नति के लिए उद्योग और कृषि दोनों का पूरा-पूरा विकास आवश्यक है। इसके लिए उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान को बढ़ावा दिया और बड़े-बड़े कल-कारखाने स्थापित कराए। साथ ही सिंचाई, उर्वरक और कृषि के विकास के लिए आवश्यक उपकरणों की ओर भी उतना ही ध्यान दिया। देश को सैनिक दृष्टि से सबल और समर्थ बनाने की ओर भी वे पूर्ण सजग थे। वे युद्ध में फँसी हुई नहीं, शांति में रहनेवाली दुनियाँ देखना चाहते थे। इसके

लिए संसार के देशों को निकट लाने का प्रयत्न भी वे बराबर करते रहे। सभी राष्ट्र 'पचशील' के सिद्धांतों के आधार पर परस्पर सद्भावना के साथ रहें, इसके लिए भी उन्होंने अनेक कदम उठाए।

पंचशील के सिद्धांत हैं :

१. देशों में परस्पर प्रादेशिक अखंडता और संप्रभुता के प्रति परस्पर सम्मान।

२. परस्पर अनाक्रमण का आश्वासन।

३. एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप।

४. परस्पर समानता और लाभ का भाव।

५. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, [१९५४ में चीन और भारत की मैत्री इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर हुई थी। इन्हें १९५५ में बांडुंग (इण्डोनेशिया) सम्मेलन में भी देशों के परस्पर संबंधों का आधार माना गया।]

स्वतंत्रता-संग्राम के प्रमुख सेनानी और स्वतंत्र भारत के निर्माता तो नेहरूजी थे ही, वे उच्च कोटि के साहित्यकार और विचारक भी थे। 'मेरी कहानी,' 'विश्व इतिहास की झलक' और 'भारत की खोज' उनके लिखे हुए प्रमुख ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में नेहरूजी ने भारत और विश्व की समस्याओं का तथा मानवीय संबंधों का जिस प्रकार वर्णन किया है, उसकी संसार भर के विद्वान आज भी सराहना करते हैं।

नेहरूजी थकना नहीं जानते थे। उनके लिए 'आराम हराम' था। वे जीवन भर परिश्रम करते रहे। उनका पूरा समय अपने प्यारे राष्ट्र की जनता को समर्पित था और २७ मई, १९६४ ई० को चिर निद्रा में विश्राम करने से पहले भी वे आधी रात तक काम करते रहे।

पंडित नेहरू के चरित्र और स्वभाव पर प्रकाश डालने वाले कतिपय प्रसंगों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है :

संगम पर सत्याग्रह

सन् १९३० ई० की बात है। माघ का महीना था। जाड़ा पड़ रहा था। उस

साल माघ की मौनी अमावस पर प्रयाग में कुंभ का भी योग था। संगम पर अपार जन-समूह एकत्र था। सभी त्रिवेणी में गोता लगाने को उत्सुक थे। बाँध के पास कुछ घुड़-सवार उस ओर का मार्ग अवरुद्ध किए खड़े थे। साधारण लोगों का साहस घुड़सवारों की अवज्ञा करके संगम की ओर बढ़ने का नहीं था। वे गंगा या यमुना में जहाँ भी गोता लगा सके स्नान करके वापस चले जा रहे थे। पर स्नानार्थियों में महामना पंडित मदन-मोहन मालवीय भी थे। वे कुछ देर तक सोचते रहे, फिर संगम की ओर चले, जिधर लोगों को जाने से घुड़सवार रोक रहे थे। घुड़सवारों ने महामना को भी आगे बढ़ने से रोक दिया। पर मालवीय जी अड़ गए और वे कुछ अन्य तीर्थ-यात्रियों के साथ सड़क पर बैठकर सत्याग्रह करने लगे।

थोड़ी ही देर में यह समाचार सारे मेले में फैल गया। पंडित मदनमोहन मालवीय के साथ बहुत-से आदमी सड़क पर बैठ कर सत्याग्रह करने लगे। पंडित जवाहरलाल नेहरू को भी समाचार मिला। बाँध पर पहुँचकर नेहरूजी ने देखा कि पंडित मदन-मोहन मालवीय बहुत से आदमियों के साथ सड़क पर बैठे हुए हैं और घुड़सवार उनका रास्ता रोककर खड़े हैं। पंडित नेहरू तुरंत सबके आगे जा पहुँचे और बैठ गए। कुछ देर बैठे रहने के बाद वे बिजली की तेजी से उठे और घुड़सवारों के घेरे को चीरते हुए उस पार निकल गए। पंडित नेहरू का आगे बढ़ना था कि सारी भीड़ में साहस का ज्वार-सा आ गया और वह उधर ही उमड़ पड़ी। बेचारे घुड़सवार खड़े-के खड़े देखते रह गए।

अनमोल छड़ी

सन् १९४७ में सरदार पटेल बीमारी के बाद विश्राम करने के लिए मसूरी गए हुए थे। जवाहरलाल जी भी उनका कुशल-क्षेम पूछने के लिए वहाँ गए। वे बाजार में लोगों से मिलते हुए चल रहे थे कि एक वृद्ध मुसलमान की छड़ियों की दूकान के सामने रुक गए। उसने बेंत दिखाए, ग्राहक ने दाम पूछे। वृद्ध सज्जन पुराने दिनों की याद में खो गए थे। ग्राहक ने फिर टोका, "बाबा दाम बताइए।" वृद्ध बोले, "पंडितजी आप मुल्क के बादशाह हैं। मैं आपसे क्या माँगू ?" नेहरूजी ने उत्तर दिया, "नहीं, ऐसी बात नहीं। कीमत आपको लेनी ही होगी।" वृद्ध दुकानदार अधिकारपूर्वक लेकिन ममता

भरे स्वर में बोला, "नहीं सरताज, नहीं ले सकूँगा, कभी आनन्द भवन में मैंने आपको नन्हें जवाहर के रूप में देखा था, तोतली बोली में आपकी बात सुनी थी। गोदी में खिलाया था। आप पर मेरा हक है।" नेहरूजी की आँखें सजल हो आईं। भरे स्वर में बोले, "कीमत नहीं दे रहा हूँ। छोटों को हमारा प्यार और मिठाई पहुँचाएँ।" वृद्ध की आँखें भर आईं। जब उसने आँखें खोली तो देखा, सामने सौ रुपये का नोट था, पर ग्राहक जा चुका था। वृद्ध ने जिन्दगी भर उस नोट को अमूल्य निशानी की तरह अपने पास रखा।

न भय न घृणा

भारत के प्रधान मंत्री होने की हैसियत से सन् १९५० ई० में नेहरूजी लंदन गए हुए थे। वहाँ एक समारोह में ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री चर्चिल से उनकी भेंट हुई। चर्चिल भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के और गांधीजी तथा नेहरूजी के कटु आलोचक थे। पर यहाँ दोनों की खुलकर बातें हुईं। पिछली बातों को याद करते हुए चर्चिल ने पूछा, "आपने अंग्रेज़ों के जेलों में कितने वर्ष बिताए?" नेहरूजी ने उत्तर दिया, "लगभग दस वर्ष।" चर्चिल ने कहा, "आपके साथ ऐसा व्यवहार करने के लिए आपको वास्तव में हमसे घृणा करनी चाहिए।" नेहरू जी ने उत्तर दिया, "बात ऐसी नहीं है। हमने ऐसे नेता के अधीन काम किया है जिसने हमें दो बातें सिखाईं। एक तो यह कि किसी से डरो मत और दूसरी किसी से घृणा मत करो। हम आपसे तब डरते भी नहीं थे इसलिए अब घृणा भी नहीं करते हैं।"

भारत का नाम याद रखना

एक बार नेहरूजी रूस की यात्रा पर गए थे। वहाँ उनका बड़ा शानदार स्वागत हुआ। रूस के किसी गाँव का एक बच्चा भी उन्हें देखने आया, पर पहरेदारों ने उसे अन्दर नहीं जाने दिया। बच्चा निराश होकर रोने लगा और वहीं बैठ गया।

कुछ देर बाद नेहरूजी बाहर आए और बच्चे को रोता देखकर उसके रोने का कारण पूछा। बच्चे ने उत्तर दिया, "मैं एक विधवा का लड़का हूँ और दूर के एक गाँव

से नेहरूजी को देखने आया हूँ, पर पहरेदारों ने मुझे अन्दर नहीं जाने दिया ।" नेहरूजी ने बच्चे को हृदय से लगाया, "रो नहीं, मैं ही नेहरू हूँ ।"

इस पर बच्चे ने उन्हें फुलों का गुलदस्ता भेंट किया जिसे उन्होंने बड़े प्रेम से स्वीकार किया । फिर नेहरूजी ने उस बच्चे को भारतीय बच्चों की ओर से एक पेन, फोटो और पचास रूबल (रूसी सिक्के) उपहार में दिए और कहा, "आशा है तुम भारत का नाम सदा याद रखोगे ।"

भीड़ और नेहरूजी

पंडितजी जब दौरे पर निकलते उनके साथ जिन्दगी की एक लहर-सी दौड़ पड़ती । सभा में पहुँचते ही जनता जय-जयकार करने लगती और जन-समुदाय तरंगित हो उठता । भीड़ अगर विशृंखल हो उठती, तो नेहरूजी भीड़ में कूदकर खुद ही उसे शांत करने लगते । शांति स्थापना के इस प्रयास में जब तब उन्हें हाथ भी छोड़ना पड़ता । किन्तु लोग इसे बुरा नहीं मानते और उनके थप्पड़ खाकर भी अपने को धन्य मानते ।

इस तरह की १९४७ की एक घटना उल्लेखनीय है । बिहार साम्प्रदायिक दंगों की आग में जल रहा था । पंडित जी पटना पहुँचे । अपनी ही देखरेख में वे शांति स्थापित करने के लिए सैनिकों से काम ले रहे थे । एक दिन नगरनौसा नामक गाँव में सैनिकों ने सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया । इस समाचार से पटना में बड़े ही क्षोभ की लहर फैल गई । शाम को जब पंडितजी नवजवानों के बीच भाषण देने पहुँचे तब लड़कों ने उनकी टोपी उतार ली और कुर्ता फाड़ दिया । भीड़ जब काबू में आ गई तब जयप्रकाशजी लोगों को समझा रहे थे कि आपने पंडितजी का अपमान करके अपने आपको अपमानित किया है । तभी पंडितजी जयप्रकाशजी को पीछे खींचकर खुद आगे आ गए, और कहने लगे, "नहीं साहब, मैं बड़ा ही बेहया आदमी हूँ । मेरी बेइज्जती जरा भी नहीं हुई, उलटे मैं आपसे खुश हूँ कि आपने इतने जोश के साथ मेरा स्वागत, किया है ।"

उनका भी नहीं। दूसरे दिन सबेरे वे नगरनौसा गए और वहाँ बड़ी भारी भीड़ के सामने पूरे घंटे भर भाषण देते रहे। गाँव के लोग इसी बात पर खुश थे कि चलो चाहे और भी कुछ हुआ हो, यह हमारे गाँव का पुण्य था कि पंडितजी हमारे गाँव में आए।

पंडितजी की इस जनप्रियता के कारण विनोबा ने उन्हें लोक-देव की उपाधि से विभूषित किया था। नेहरू भारत के नेता ही नहीं सचमुच लोकदेव थे।

हिंसा और अहिंसा

"कुछ बातें ऐसी हैं, जो व्यक्ति के लिए शक्य और समूह के लिए अशक्य होती हैं। अहिंसा को लेकर मेरे सामने यही कठिनाई है। अगर समूह को अहिंसा के लिए लाचार किया गया, तो समूह असफल हो जाएगा। और मुश्किल यह है कि जनता जब असफल होती है, तब वह बिल्कुल ही असफल हो जाती है।"

जिस दिन प्रधान मंत्री ने गोआ पर आक्रमण का आदेश दिया, उसी दिन जय-प्रकाशजी और श्री रामचंद्रन ने दिल्ली में शांति-सेना का एक समारोह आयोजित किया। उससे पूर्व राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने अपराह्न में शांति-सैनिकों को राष्ट्रपति-भवन बुलाकर उनका स्वागत किया था। शाम की सभा में बोलते हुए श्री रामचंद्रन ने कहा, "यह भी अजीब मुल्क है। इस देश के राष्ट्रपति शांति-सैनिकों को राष्ट्रपति-भवन बुलाकर उनका अभिनंदन करते हैं और उसी दिन प्रधान मंत्री फौजी कूच का आदेश लिखते हैं।"

पंडितजी सभा में मौजूद थे, किन्तु, वे श्री रामचंद्रन के भाषण से तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा, "शांति-सेना का आयोजन ठीक है। इससे अहिंसा का प्रचार होता है और अहिंसा का प्रचार जितना ही अधिक होता है, समाज उतना ही अधिक शिष्ट और सभ्य बनता है। किन्तु दुश्मन का मुकाबला करने को हम शांति सैनिकों को पहाड़ों पर कैसे भेजें? और भेजें भी तो उनके पीछे-पीछे हमें फौज की टुकड़ियाँ भी भेजनी होंगी।" शांति-सेना के आयोजक इस भाषण से नाराज हुए थे। मगर मुझे लगा, एक अप्रिय बात इससे अधिक प्रियता के साथ नहीं कही जा सकती।

अपूर्व धैर्य

एक बार पंडितजी जिस हवाई जहाज में यात्रा कर रहे थे, उसमें आग लग गई। चालक बड़े परेशान हुए और अपनी घबराहट की बात उन्होंने पंडितजी को बताई भी। मगर पंडितजी तनिक भी नहीं घबराए। कहा, "जो कर सकते हो, करो" यह कहकर उन्होंने चालकों को आश्वस्त कर दिया और खुद किताब पढ़ने लगे। सौभाग्य से चालकों ने एक चारागाह में जहाज़ उतार दिया और सभी लोग सकुशल बच गए।

—निरंजनकुमार सिंह

प्रश्न-अभ्यास

१. पं० जवाहरलाल नेहरू का जन्म कब और कहां हुआ था ?

२. पं० नेहरू को महान् बनाने में उनकी पारिवारिक स्थितियों का क्या योगदान है ?

३. पं० नेहरू की प्रारंभिक शिक्षा कहां और कैसे हुई ? विदेश में उन्होंने किन विषयों का विशेषरूप से अध्ययन किया ?

४. स्वतंत्रता-संग्राम में वे किस महापुरुष की प्रेरणा से आगे बढ़े ? बाद में वे अपने किन गुणों के कारण उनके विशेष स्नेह भाजन बने ?

५. भारत को स्वतंत्र कराने में पं० नेहरू का क्या योगदान था ?

६. पं० नेहरू कब से कब तक भारत के प्रधान मंत्री रहे ? प्रधान मंत्री के रूप में उनके द्वारा किए गए प्रमुख कार्यों का उल्लेख करो।

७. पं० नेहरू को आधुनिक भारत का निर्माता क्यों कहा जाता है ?

८. कुछ लोगों की मान्यता है कि पं० नेहरू यदि राजनीति में नहीं आते तो महान् साहित्यकार होते। उनके कथन का आधार क्या हो सकता है ?

९. विश्व-शांति के लिए पं० नेहरू द्वारा किए गए प्रयत्नों और कार्यों का संक्षेप में वर्णन करो।

१०. संसार भर के बच्चे उन्हें 'चाचा नेहरू' कहकर क्यों याद करते हैं ? बच्चों से संबंधित पं० नेहरू का कोई रोचक प्रसंग सुनाओ।

११. अपने किन गुणों के कारण पं० नेहरू हमेशा याद किए जाएँगे ?



डा० भीमराव अंबेडकर

७.

डा० भीमराव अंबेडकर

डा० भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारत के प्रमुख विधि-वेत्ता, समाज-सुधारक और राष्ट्रीय नेता थे। उन्होंने बड़ी विपरीत परिस्थितियों में अपना जीवन आरंभ किया। वे उस वर्ग में पैदा हुए थे, जिसे अंधविश्वास के कारण हिन्दू समाज में निम्नकोटि का समझा जाता था। डा० अंबेडकर को इसके कारण पग-पग पर अपमान सहना पड़ा। परन्तु इस सामाजिक भेदभाव, विषमता और अपमान से वे झुके नहीं। उन्होंने इस जातिगत भेदभाव का दृढ़ता से सामना किया और अपने अध्यवसाय, लगन, कार्य-क्षमता तथा समुन्नत जीवन द्वारा यह दिखा दिया कि मनुष्य किस प्रकार सामाजिक भेदभाव तथा रूढ़ियों का सामना करके ऊँचा उठ सकता है। देश और विदेश में उच्च शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन समाज के उस वर्ग को ऊपर उठाने में लगाया जो निम्न समझा जाता था, और सब ओर से उपेक्षित था।

डा० अंबेडकर का एक बड़ा योगदान स्वतंत्र भारत का संविधान है। वे उस संविधान-समिति के अध्यक्ष थे जिसने पूरे संविधान का प्रारूप तैयार किया। यह बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य था। उनके जैसा अनुभवी, कानूनी प्रतिभा से संपन्न, योग्य और उदार दृष्टिकोण का व्यक्ति ही इस काम को सफलतापूर्वक कर सकता था। इस महत्त्व-पूर्ण काम को पूरा करने के कारण ही उन्हें "भारत का आधुनिक मनु कहकर सम्मानित किया जाता है।

डा० अंबेडकर का जन्म १४ अप्रैल, १८९१ ई० को महू में (जो अब मध्य प्रदेश में इन्दौर के पास स्थित है) एक महार परिवार में हुआ था उनका बचपन का नाम भीम

सकपाल था। उनके पिता रामजी मौला जी सैनिक स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। उन्हें मराठी, गणित और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। घर का वातावरण धार्मिक था और परिवार में कबीरपंथी उदार विचारों का पूरा प्रभाव था। समाज में उस समय जो ऊँच-नीच और छुआछूत की संकीर्णता फैली हुई थी, उसे देखते हुए पिता यह अनुभव करते थे कि यदि भीम को जीवन में आगे बढ़ना है तो उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर ही यह संभव हो सकता है।

बालक भीम सकपाल को विद्यार्थी जीवन से छुआछूत के कटु अनुभव होने लगे। गर्मी के दिन थे, ६ वर्ष का भीम अपने बड़े भाई के साथ पिता से मिलने जा रहा था। दोनों भाई स्टेशन पर उतरे। पिता किसी कारणवश उन्हें लेने नहीं आ सके। गाँव दूर था। देहात की ऊबड़-खाबड़ पैदल-यात्रा थी। स्टेशन मास्टर ने दया करके उनके लिए किराए की एक बैलगाड़ी ठीक कर दी। दोनों बच्चे गाड़ी में बैठकर कुछ दूर ही गए थे कि गाड़ीवान ने उनकी जाति पूछी। बच्चों ने सच-सच बता दिया। अब तो गाड़ीवान आग-बबूला हो गया और उसने दोनों बच्चों को गाड़ी से धकेल दिया। दोनों भाई रोते-बिलखते काफी देर बाद घर पहुँचे। रास्ते में उनको किसी ने पीने के लिए पानी तक नहीं दिया।

एक बार की बात है, बालक भीम भयंकर वर्षा से बचने के लिए एक मकान के बरामदे में खड़ा था। सवर्ण मकान मालिक को जब बालक की जाति का पता चला तो उसने उसे बस्ते सहित बरसात के कीचड़ सने पानी में धकेल दिया।

बालक भीम को इस प्रकार के अनेक अपमान सहने पड़े। उस समय अशिक्षा के कारण हमारे समाज में यह जातिगत भेदभाव बहुत था। नाई उसके बाल नहीं काटता था और अध्यापक उसे संस्कृत पढ़ाने को तैयार नहीं थे। वह मेधावी छात्र था, पर उसे यह सब सहना पड़ता था। पर इससे बालक का साहस टूटा नहीं। उसके व्यवहार में दृढ़ता आई और उसने बचपन में ही यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह छुआछूत के कलंक के विरुद्ध संघर्ष करेगा। साधनों की कमी ने उसकी राह नहीं रोकी। पिता की नौकरी समाप्त

हो गई थी। पूरा परिवार एक कोठरी में रहता था और भीम के पढ़ने के लिए कोई स्थान नही था। इसका भी हल निकल आया। भीम जल्दी सो जाता था और रात के दो बजे से, जब पूरा परिवार गहरी नींद में सोया होता, वह जागकर कोठरी के एक कोने में चुपचाप अध्ययन किया करता था। पिता भी पुत्र को उतने ही उत्साह से पढ़ाते रहे। उसकी शिक्षा के लिए उन्होंने घर का सामान तक बेच डाला। इन्हीं दिनों विद्यालय के अध्यापक ने भीम का उपनाम 'मर्कपाल' बदलकर अंबावदे गाँव के आधार पर 'अंबेडकर' रख दिया था।

भीमराव अंबेडकर ने बी० ए० की परीक्षा पास की। आगे अध्ययन के लिए साधन नही थे। इन्हीं दिनों बड़ौदा रियासत की ओर से कुछ योग्य छात्रों को विदेश जाकर अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति देने की घोषणा की गई। अंबेडकर को भी इसका लाभ उठाने का अवसर मिल गया। पर शर्त यह रखी गई कि लौटने पर उन्हें १० वर्षों तक रियासत की सेवा करनी होगी। अंबेडकर १९१३ ई० से १९१७ ई० तक अमेरिका और इंग्लैंड में रहे। उन्होंने अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और कानून का गहन अध्ययन किया और पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

छात्रवृत्ति की शर्त के अनुसार डा० अंबेडकर को वापस आने पर बड़ौदा रियासत की सेवा करनी थी। महाराजा ने उन्हे अपने सैनिक सचिव के पद पर नियुक्त किया। महाराजा का आदेश था कि स्टेशन पर उनका स्वागत किया जाए। पर स्वागत तो दूर रहा, कोई कर्मचारी उन्हें रास्ता बताने के लिए भी नहीं पहुँचा। उनके अछूत होने की सूचना पहले ही पहुँच चुकी थी। किसी होटल में उन्हें टिकने के लिए स्थान नहीं मिला। अंत में एक पारसी सराय में उन्होंने शरण ली। पर जिस दिन सराय के मालिक को उनकी जाति का पता चला, उसने भी डा० अंबेडकर को बाहर निकाल दिया। कोई हिन्दू या मुसलमान उन्हें स्थान देने को तैयार नहीं था। ऐसी परिस्थिति में एक रात तो उन्हें पेड़ के नीचे बितानी पड़ी।

डा० अंबेडकर महाराजा के सैनिक सचिव के पद पर थे, फिर भी उन्हें अपने ही

कार्यालय में बड़े कटु व्यवहारों का सामना करना पड़ा। पढ़े-लिखे व्यक्ति ही नहीं, अपितु चपरासी भी उनके साथ अछूत का-सा व्यवहार करते थे। उनके हाथों से कोई व्यक्ति कागज तक न पकड़ता था। उन्हें कार्यालय में पीने को पानी नहीं मिलता था और दफ्तर की दरियां भी उनके चलने से अशुद्ध हो जाती थीं। हारकर वह पद छोड़ना पड़ा और उन्हें बंबई आकर विद्यालय में अध्यापन कार्य करना पड़ा। पर छुआछूत के अभिशाप ने यहां भी पीछा नहीं छोड़ा।

बचपन से ही लगातार जिन विषम स्थितियों का डा० अंबेडकर को सामना करना पड़ा, इससे उनका हृदय उद्विग्न हो उठा। आजीविका के लिए वकालत का पेशा अपनाकर वे दलित वर्ग को छुआछूत के विरुद्ध संगठित करने के काम में जुट गए। उन्होंने अपना पूरा जीवन इस वर्ग में जागृति पैदा करने और उसे अपने पैरों पर खड़ा करने में लगा दिया।

इस बीच गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने भी हिन्दू समाज के इस कलंक को मिटाने का प्रयास प्रारंभ कर दिया था, पर डा० अंबेडकर इन प्रयत्नों को पर्याप्त नहीं समझते थे। वे किसी की अनुकंपा नहीं चाहते थे। उनका कहना था कि हमें हमारा अधिकार मिलना चाहिए। वे 'अस्पृश्यों' को सार्वजनिक कुओं से पानी लेने और मंदिर प्रवेश के लिए संगठित करने लगे। डा० अंबेडकर पूछते, "क्या दुनिया में ऐसा और भी कोई समाज है, जिसमें मनुष्यों के एक वर्ग को अछूत माना जाए, जिनकी परछाईं से और देखने मात्र से दूसरे लोग गंदे हो जाते हों?" उनके मन में उन पुराने धर्म ग्रंथों के लिए कोई सम्मान नहीं था, जिनमें हिंदुओं के ही एक वर्ग को अंत्यज माना जाता हो। अपनी बात उन्होंने हर मंच से कही। लंदन में आयोजित दो गोलमेज सम्मेलनों के अवसर पर उन्होंने लोगों का ध्यान अछूतों की समस्या की ओर खींचा। वे जब वाइसराय की एक्जिक्यूटिव कौंसिल के सदस्य बने, तो इस हैसियत से भी वे इस समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न करते रहे। उनके प्रयत्नों से सार्वजनिक और राजनैतिक दोनों स्तरों पर देश का ध्यान इस समस्या की ओर गया और स्थिति में स्थायी सुधार के लिए ठोस कदम उठाए गए।

भारत के स्वतंत्र होने तक डा० अंबेडकर अपनी विद्वत्ता, संगठन-शक्ति और सुलझे विचारों के कारण देश में अपना विशेष स्थान बना चुके थे। स्वतंत्रता के बाद १९४७ ई० में जो प्रथम राष्ट्रीय सरकार बनी, उसमें डा० अंबेडकर, केन्द्रीय मंत्रिमंडल में कानून मन्त्री के रूप में सम्मिलित हुए। उन्हें संविधान सभा की उस समिति का अध्यक्ष भी बनाया गया, जिसे संविधान का प्रारूप बनाने का काम सौंपा गया था। डा० अंबेडकर के प्रगतिशील विचारों का यह प्रमाण है कि भारतीय संविधान के द्वारा देश से जाति, धर्म, भाषा और स्त्री-पुरुष के आधार पर सभी प्रकार के भेदभावों को सदा के लिए समाप्त कर दिया गया।

धार्मिक दृष्टि से डा० अंबेडकर को भगवान बुद्ध का मत अधिक आकर्षक लगता था, क्योंकि उसमें जन्म-आधारित जातिगत भेदभाव या ऊँच-नीच के लिए कोई स्थान नहीं था। इसलिए अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने अपने अनेक अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

अक्तूबर १९५१ तक डा० अंबेडकर केन्द्रीय मंत्रिमंडल में रहे। तत्पश्चात् वे मंत्रिमंडल से बाहर आकर समाज के पिछड़े वर्गों को संगठित करने के काम में जुटगए। पर उनके कर्मठ, यशस्वी और प्रतिभावान् जीवन का अंत निकट आ चुका था। ६ दिसम्बर, १९५६ ई० को नई दिल्ली में उनका देहांत हो गया।

—निरंजनकुमार सिंह

प्रश्न-अभ्यास

१. डा० अंबेडकर का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

२. अंबेडकर का पारिवारिक जीवन कैसा था ?

३. अंबेडकर को विद्यार्थी जीवन में ही छुआछूत के कटु अनुभव होने लगे थे, इससे संबंधित दो घटनाओं का उल्लेख करो।

४. इनका नाम अंबेडकर कैसे पड़ा ?

५. अंबेडकर ने कहाँ जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त की ? उन्होंने किन विषयों की उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा कौन-सी सबसे बड़ी उपाधि प्राप्त की ?

६ अंबेडकर के प्रति किए गए व्यवहारों से हमारी किन सामाजिक संकीर्णताओं का पता चलता है ?

७. स्वतंत्र भारत के लिए डा० अंबेडकर का क्या महत्त्वपूर्ण योगदान रहा ? उन्हें 'आधुनिक मनु' क्यों कहा जाता है ?

८. डा० अंबेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा क्यों ली ?

९. छुआछूत के कलंक को मिटाने के लिए डा० अंबेडकर ने क्या किया ?

८.

नेताजी सुभाष चंद्र बोस

देश के स्वतंत्रता-संग्राम के महान् सेनानियों में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के साथ ही लिया जाता है। इस महान् पुरुष का व्यक्तित्व प्रारंभ से ही ओजस्वी और वीरता-पूर्ण रहा। अन्याय और अत्याचार को सहन करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। दासता उनके लिए सबसे बड़ी अभिशाप थी। देश को आज़ाद करने के लिए वे किसी भी कुर्बानी को बड़ा नहीं मानते थे। सन् १८५७ के बाद पहली बार भारतीयों की सेना संगठित करके देश से विदेशी सत्ता को समूल उखाड़ फेंकने का प्रयत्न उसी वीर ने किया था। उनका 'जयहिन्द' का नारा देश के कोटि-कोटि कंठों में गूंजने लगा था और फिर स्वतंत्र भारत का तो यह राष्ट्रीय नारा ही बन गया।

सुभाष का जन्म उड़ीसा के कटक नगर में २३ जनवरी १८९७ को हुआ था। उनके पिता बाबू जानकीनाथ बोस कटक के एक प्रसिद्ध वकील थे। सुभाष बचपन से ही बड़े मेधावी और स्वाभिमानी थे। एन्ट्रेंस की परीक्षा उन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् वे कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में पढ़ने लगे। इस कालेज में भारतीय विद्यार्थियों को अंग्रेज अध्यापक एवं अंग्रेज विद्यार्थी तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। इसे सहन करना सुभाष के स्वभाव में नहीं था। इस स्थिति का सामना करने के लिए उन्होंने भारतीय विद्यार्थियों का एक दल बनाया। उन्होंने उन अंग्रेज अध्यापकों का डटकर विरोध किया जो भारतीय विद्यार्थियों का तिरस्कार करते थे। कालेज के अंग्रेज अध्यापकों ने सम्मिलित रूप से सुभाष पर मनमाने झूठे आरोप लगाए और उन्हें कालेज से निष्कासित करा दिया। बाद में उन्हें कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रवेश मिला। सुभाष ने वहाँ से बी० ए० की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।



नेताजी सुभाष चंद्र बोस

बाबू जानकीनाथ चाहते थे कि उनका पुत्र आई० सी० एस० होकर सरकारी नौकरी में उच्च पद प्राप्त करे। पर सुभाष के मन में देश-प्रेम हिलोरें ले रहा था वे ब्रिटिश-सरकार की नौकरी करना नहीं चाहते थे। लेकिन पिता के आदेशों के सम्मुख उन्हें झुकना पड़ा। वे परीक्षा देने के लिए इंग्लैंड गए और केवल आठ महीने के अध्ययन में ही उन्होंने आई० सी० एस० की परीक्षा सम्मानपूर्वक उत्तीर्ण की। पिता की आकांक्षा तो उन्होंने पूरी कर दी, किन्तु अपनी अंतरात्मा की आवाज़ भी वे अनसुनी न कर सके। वे यह सोचते थे कि सिविल सर्विस में रहकर पराधीन देश की जनता की भलाई नहीं की जा सकती। अतः उन्होंने आई० सी० एस० से इस्तीफा दे दिया और भारत लौट आए।

जिस समय सुभाष भारत लौटे, उस समय यहाँ गांधीजी का सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। बंगाल में देशबंधु चित्तरंजन दास का बड़ा प्रभाव था। सुभाष बाबू ने उन्हें अपना राजनैतिक गुरु बनाया। प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत आगमन होने वाला था। अंग्रेज सरकार उनके भव्य स्वागत की तैयारियों में लगी हुई थी। कांग्रेस ने इस स्वागत-समारोह का बहिष्कार करने का निश्चय किया था। बंगाल में देशबंधु तथा सुभाष बाबू के प्रयासों से यह बहिष्कार बहुत सफल रहा। सुभाष की अद्‌भुत संगठन-शक्ति देखकर अंग्रेज सरकार हिल उठी। उसने उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया।

छः महीने के बाद जब सुभाष बाबू जेल से छूटे, उन्होंने देशबंधु के साथ मिलकर अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ और तेज कर दीं। असहयोग आंदोलन बंद हो गया था और सभी नेता जेल से छूट गए थे। कांग्रेस में कुछ लोग चाहते थे कि केवल रचनात्मक कार्य किए जाएँ, परन्तु कुछ का विचार था कि रचनात्मक कार्यों के साथ ही विधान सभाओं में घुसकर उन्हें खत्म करने या सुधारने का प्रयास किया जाए। देशबंधु और मोतीलाल नेहरू भी इसी मत के थे। इस मत के अनुयायियों ने 'स्वराज्य दल' का गठन किया। सुभाष तो देशबंधु के कट्टर अनुयायी थे ही। उनके अथक परिश्रम और उनकी लगन से स्वराज्य दल की शक्ति बहुत बढ़ गई। सन् १९१८ में जब कलकत्ता नगर निगम के निर्वाचन में स्वराज्य पार्टी को सफलता मिली, तब सुभाष निगम के कार्यपालक अधिकारी हुए। उन्होंने पाँच महीने के अल्प काल में ही नगर निगम की कायापलट कर दी और अनेक महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कल्याण के कार्य किए।

इसी समय देशबंधु की प्रेरणा से 'बांगलार कथा' नामक पत्र निकाला गया। उसके संपादन का भार सुभाष पर पड़ा। देशबंधु ने दूसरा पत्र 'फारवर्ड' भी निकाला और सुभाष को उसका प्रबंधक बनाया गया। सुभाष को इन दोनों पत्रों में अथक परिश्रम करना पड़ा, पर उनकी ओजस्वी लेखनी-शक्ति, कार्य कुशलता और राष्ट्र-भक्ति की सभी ने एक स्वर से प्रशंसा की।

देश में जहाँ एक ओर गांधीजी का अहिंसात्मक आंदोलन चल रहा था, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारियों का सशस्त्र आदोलन भी चल रहा था। बंगाल और उत्तर भारत में इस आंदोलन का विस्तार होने लगा था। सुभाष बाबू ने किसी-न-किसी रूप में इस दल से बराबर संबंध बनाए रखा। सरकार ने इस आंदोलन को दबाने के लिए एक अध्यादेश जारी किया और सुभाष को भी गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु जेल में उनका स्वास्थ्य खराब होने लगा इसलिए बाद में उन्हें मुक्त कर दिया गया। इसके बाद तो वे बराबर गिरफ्तार होते और छूटते रहे।

सुभाष बाबू की गणना अब कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं में होने लगी थी। वे १६३८ में कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् १६३६ में वे पुन: कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए, गांधीजी से मतभेद होने पर वे कांग्रेस से अलग हो गए और 'फारवर्ड ब्लाक' नामक राजनैतिक दल की स्थापना की। इस संगठन ने संपूर्ण देश में बहुत जल्दी ही लोकप्रियता अर्जित कर ली। इस कारण सरकार ने भारत रक्षा कानून के अंतर्गत उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया।

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंम्भ हो गया था। सुभाष बाबू इस अवसर पर जेल में बंद नहीं रहना चाहते थे। वे इस अवसर को ब्रिटिश साम्राज्यशाही के चंगुल से भारत को स्वतंत्र कराने का बहुत उपयुक्त अवसर समझते थे। उन्होंने अपनी मुक्ति के लिए जेल में ही आमरण अनशन आरंभ कर दिया। अंग्रेज सरकार उनके अनशन से इतनी भयभीत हुई कि उन्हें जेल से छोड़कर उनके घर में ही नजरबंद कर दिया।

घर में सुभाष बाबू पर पुलिस की कड़ी निगरानी रहती थी, पर वे गुप्त रूप से भारत से बाहर जाने की योजना बना रहे थे। १६४१ ई० की जनवरी में एक दिन वे अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंककर भारत से निकल गए। सुभाष बाबू चाहते थे कि

अंग्रेज़ों के विरुद्ध जहाँ से भी सहायता मिल सके, ली जाए। इसीलिए उन्होंने जर्मनी में हिटलर से भेंट की। वे अभी अपने भावी विचार कर ही रहे थे कि उन्हे सिंगापुर आने का निमंत्रण मिला। युद्ध के खतरों की चिन्ता न करते हुए सुभाष पनडुब्बी में बैठकर सिंगापुर पहुँच गए।

सिंगापुर और उसके आसपास के देशों मे बहुत से भारतीय बसे हुए थे। अंग्रेज़ों ने जापानियों से युद्ध करने के लिए सिंगापुर मोर्चे पर भारतीय सेना भेज रखी थी। जापानियों ने विभिन्न मोर्चे पर अंग्रेजी सेना के सैनिकों को बंदी बना लिया था। इनमें सैकड़ों भारतीय सैनिक भी थे। सुभाष ने सिंगापुर में पहुँचकर ऐसे सैनिकों को मुक्त कराया और 'आज़ाद हिन्द फौज' का संगठन किया। प्रवासी भारतीयों ने इस फौज के लिए अपार धन दिया। सुभाष बाबू यहीं से 'नेताजी' के नाम से प्रख्यात हुए। उन्होंने अपनी सेना को नारा दिया 'दिल्ली चलो'। सिंगापुर में ही नेताजी ने 'आज़ाद हिन्द सरकार' की भी स्थापना की। यहीं उन्होंने 'जय हिन्द' का नारा दिया जो आगे चलकर हमारा राष्ट्रीय नारा बन गया।

आजाद हिन्द फौज ने ब्रिटिश सैनिकों के विरुद्ध अनेक मोर्चों पर युद्ध किया। युद्ध में विजय प्राप्त करती हुई यह सेना वर्मा की ओर से कई जगह भारत की सीमाओं के अंदर पहुँच गई, जहाँ तिरंगा झंडा गाड़कर आज़ादी घोषित कर दी गई। आज़ादी प्राप्त करने के लिए त्याग और बलिदान आवश्यक है। इसलिए सुभाष ने कहा था, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।" आज़ाद हिन्द सेना के सैनिक देश-प्रेम में मतवाले थे। वे अपना सर सदा हथेली पर रखते थे। यही कारण था कि वे जिस मोर्चे पर युद्ध करते वहीं उनकी जीत होती। पर विश्व-युद्ध में सन् १९४५ से युद्ध का पासा पलटने लगा और मित्र-राष्ट्रों की विजय होने लगी। अंग्रेज़ भी मित्र-राष्ट्रों में ही थे। अतः जगह-जगह अंग्रेजों की विजय से आज़ाद हिन्द फौज को भी पीछे हटना पड़ा।

इन परिस्थितियों में भी नेताजी निराश नहीं हुए। उन्होंने कहा, "इसमें संदेह नहीं कि हमारे लोग गिरफ्तार हो जाएँगे पर देश में ऐसा उत्साह और मनोबल बढ़ेगा कि आज़ाद हिन्द फौज के सैनिक छूट जाएँगे और देश स्वतंत्र हो जाएगा।"

नेताजी की यह भविष्य-वाणी सत्य सिद्ध हुई। १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतंत्र हुआ, किन्तु यह शुभ-दिन आने के पूर्व ही वह महान् 'देश-भक्त' स्वतंत्रता संग्राम का अमर सेनानी इस संसार से विदा ले चुका था। १८ अगस्त सन् १९४५ को एक हवाई-यात्रा में उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और उसी में इस वीर पुरुष ने सदा के लिए आँखें मूंद लीं।

उनके जीवन से कुछ प्रेरक प्रसंग नीचे लिखे जा रहे हैं :

अपनी रोटी में से

"सुभाष...सुभाष...क्या कर रहा है बेटे ?" पुकारती हुई माँ प्रभावती सुभाष के कमरे में आ गईं। कमरा खाली था। अचानक उनकी दृष्टि अलमारी की ओर जाती हुई चीटियों की कतार पर पड़ी। उन्होंने अलमारी खोली तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पुस्तकों के पीछे दो सूखी रोटियाँ पड़ी थीं, जिनमें चीटियाँ लगी थीं। माँ को बेटे के इस विचित्र काम पर आश्चर्य हो रहा था। तभी बालक सुभाष कमरे में आया। उसका चेहरा उतरा हुआ था।

"लगता है तेरा दिमाग खराब हो गया है। अरे पागल, तूने इस अलमारी में रोटियाँ डाल रखी थीं" माँ ने डपटते हुए पूछा।

"तुमने वे रोटियाँ फेंक दी न माँ ?...ठीक ही किया ?" कहते-कहते सुभाष का गला भर आया।

"यह तुझे क्या हो गया ? मैं रोटियों की बात कुछ समझ नहीं पाई।"

"बात यह है कि मैं नित्य अपने खाने में से दो रोटियाँ बचाकर एक बूढ़ी भिखारिन को दिया करता था। वह मेरे स्कूल के रास्ते में खड़ी होती थी। आज जब मैं रोटियाँ देने गया तो वह अपनी जगह पर नहीं थी, इसीलिए उसके हिस्से की रोटियाँ मैंने यहाँ रख दी थीं। मैं अभी वहाँ गया था, तो पता चला कि उस बेचारी का निधन हो गया।" भिखारिन मानो उसकी कोई आत्मीय हो।

बेटे की इस सहृदयता और उदारता पर माँ प्रभावती का रोम-रोम गद्गद् हो गया। वह हर्षातिरेक में उसके माथे को चूमती हुई प्रेम विभोर कंठ से बोली, "तू मनुष्य नहीं अवतारी है बेटे, मेरी कोख धन्य हो गई।"

अपमान का बदला

"शटअप, ईडियट—यू ब्लैक इंडियंस" एक गोरा बालक कक्षा में ही किसी बात पर एक भारतीय बालक का कालर पकड़कर झकझोरते हुए चिल्लाया। सारी कक्षा में सन्नाटा छा गया। भारतीय बालक सहम गया। वह कातर दृष्टि से गोरे बालक की ओर देखता रहा। पर उसकी बगल की सीट पर बैठे हुए एक दूसरे भारतीय बालक की भुजाएँ फड़कने लगीं। उस समय कक्षा में अध्यापक नहीं आए थे।

"डैम डॉग।" किसी को बीच-बचाव न करते देख गोरा बालक शेर की तरह फिर दहाड़ा। भारतीय बालक की आँखों में क्षमा-याचना का भाव था, परंतु उसके दूसरे भारतीय सहपाठी के नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह गोरे बालक से बदला चुकाने के लिए आतुर हो रहा था। तभी कक्षा में अध्यापक ने प्रवेश किया। भारतीय बालक की इच्छा भीतर ही सुलग कर रह गई।

मध्यांतर हुआ और उसने अपने सहपाठी भारतीय बालक को अपने पास बुलाकर कहा, "तुम बुजदिल हो। अगर उस गोरे बदमाश ने मेरा अपमान किया होता तो मैं मारते-मारते उसका कचूमर निकाल देता।...लेकिन घबराओ नहीं। मैं उस अंग्रेज के बच्चे से तुम्हारे अपमान का बदला लूँगा। भले ही वह किसी बड़े अफसर का बेटा हो।"

सहपाठी श्रद्धा और आभार से गद्गद् हो गया, किन्तु सशंकित होकर बोला, "आप ठीक कहते हैं। हमें उससे बदला लेना ही चाहिए, परंतु इसका परिणाम भयंकर हो सकता है।"

"इसकी चिन्ता मत करो। अन्याय का विरोध करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है, चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। हमारी अन्याय सहने की कमजोरी ने ही हमें अंग्रेजों का गुलाम बना रखा है।"

छुट्टी हुई। दोनों भारतीय साथी विद्यालय से बाहर आ गए। आगे-आगे अंग्रेज

चल रहा था। सहसा अपनी टाँग में लंगी मारे जाने के कारण वह चारों खाने चित्त होकर गिर पड़ा। भारतीय बालक उसकी छाती पर सवार था और उसे अधाधुंध घूँसे मार रहा था। अंग्रेज़ बालक हक्का-बक्का-सा उस भारतीय बालक को देख रहा था। स्कूल के तमाम विद्यार्थी वहां घिर आए थे। छाती पर सवार भारतीय ने कहा, "भविष्य में यदि किसी भारतीय विद्यार्थी के साथ तूने दुर्व्यवहार किया, तो हड्डी-पसली तोड़कर रख दूँगा।" यह चेतावनी देने वाला बालक था—सुभाष।

आई० सी० एस० ठकुराई

सुभाष के पिता चाहते थे कि उनका पुत्र आई० सी० एस० परीक्षा पास करके एक उच्च अधिकारी बने। इसके लिए वे सुभाष को विदेश भेजने की योजना बना रहे थे। बालक सुभाष ब्रिटिश सरकार के अधीन उच्च पदाधिकरी बनकर अपने वास्तविक उद्देश्य से विमुख नहीं होना चाहते थे। उन्होंने अपने पिता से कहा, "पिताजी, वास्तव में मैने आई० सी० एस० बनने की कभी आकांक्षा नही की।...आई० सी० एस० बनकर मैं नैतिकता और स्वतंत्रता के साथ अपनी आत्मा और अपने देश के प्रति न्याय नहीं कर सकूँगा। किसी भी संपन्न पिता का प्रतिभावान बेटा आई० सी० एस० बन सकता है और यह उसके लिए कोई असाधारण बात नहीं होगी, किन्तु उसी प्रतिभा का सदुपयोग यदि जन-सेवा के लिए किया जाए तो गौरव का विषय होगा।"

पुत्र के इस कथन को सुनकर पिता गंभीर हो गए। वे तो अपनी अभिलाषा पूरी करना चाहते थे। इसलिए अपने पुत्र के स्वाभिमान पर तीव्र प्रहार करते हुए उन्होंने कहा। "साफ क्यों नही कहते कि तुममें आई० सी० एस० परीक्षा पास करने की क्षमता ही नहीं है।" यह वाक्य सुनकर सुभाष का स्वाभिमान तिलमिला उठा। उनके जीवन में सर्वाधिक कष्टदायक स्थिति यह थी कि कोई उनके स्वाभिमान को आघात पहुँचाए और वे विरोध भी न कर सकें।

"यदि आप मुझे आई० सी० एस० बनाने के लिए कटिबद्ध ही हैं, तो मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि मै आप की अभिलाषा को निष्फल नही होने दूँगा।" सुभाष ने

उत्तर दिया।

इस घटना के एक सप्ताह के बाद वे आई० सी० एस० की प्रतियोगिता में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैंड पहुँचे। उन्होंने गुप्त रूप से यह शपथ भी ले रखी थी कि आई० सी० एस० परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने के बाद वे उस पद को त्याग देंगे। केवल आठ महीने की अल्पावधि में सुभाष ने आई० सी० एस० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सुभाष की प्रतिभा और क्षमता का लोहा अंग्रेज प्रोफेसरों को भी मानना पड़ा। लेकिन सुभाष ने अपनी गुप्त प्रतिज्ञा भी पूरी की। उन्होंने अपना त्यागपत्र भारत के तत्कालीन ब्रिटिश राज्य के सचिव को भेजते हुए लिखा,"मैं एक विदेशी सत्ता के अधीन कार्य नहीं कर सकता। देश-भक्ति एवं त्याग का यह उदाहरण अनोखा और अद्वितीय हैं।

अंग्रेजों की आँखों में धूल

कलकत्ता के एलगिन रोड का मकान। मकान के चारों ओर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। सादे वेशधारी अनेक जासूस भी घर के इर्द-गिर्द घूम रहे थे। घर में जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर चौकसी रखी जाती थी।

घर के एक एकांत कमरे में एक महापुरुष निश्चिन्त भाव से बैठे थे। लगता था कि वे किसी साधना में लीन हैं। किसी भी बाहरी व्यक्ति को उनसे मिलने की अनुमति नहीं थी। इसी प्रकार कई सप्ताह गुजर गए। उन महापुरुष की दाढ़ी बढ़ आई थी। अब उनका रूप कुछ ऐसा हो गया था कि वे सहसा एक नजर में पहचाने नहीं जा सकते थे।

१७ जनवरी १९४१ की आधी रात का समय होगा। सशस्त्र पुलिस के सिपाही अभी भी मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी पर थे। लेकिन मकान के अंदर उस एकांत कमरे में क्या हो रहा था, इसका उन्हें रंचमात्र आभास नहीं था। वहाँ उन साधक की गतिविधि उस रात्रि में कुछ तेज हो गई थी। उन्होंने अपने नित्य के वस्त्र उतार फेंके थे और उनके स्थान पर पहन लिया था पठानी पायजामा, शेरवानी और पंप शू। सर पर उन्होंने

फैज़ टोपी लगा ली थी। अब वे एक पठान दिखाई पड़ते थे।

इसी समय संकेत हुआ। दूसरी गली में एक कार आकर रुकी। पठान वेशधारी व्यक्ति सशस्त्र पुलिस वालों की आँखों में धूल झोंकता हुआ उस कार में जाकर बैठ गया। कार तीव्र गति से ग्रांड ट्रंक रोड पर दौड़ने लगी। लगभग ६० किलोमीटर दूर स्थित गमोह रेलवे स्टेशन के निकट कार रुकी। स्टेशन पर जब गाड़ी आई तो कार में से उतरकर पठान गाड़ी के डिब्बे में जा बैठा। रात निष्कंटक कटी। दिन में एक फौजी अफसर के पूछने पर पठान ने अपना परिचय दिया, "जियाउद्दीन बीमा कंपनी का संगठन-कर्ता" फौजी अफसर से छुटकारा मिला। लेकिन जियाउद्दीन सतर्क था। कोई संदेह-जनक व्यक्ति डिब्बे में घुसा नहीं कि उसने अखबार अपने मुँह के बिलकुल पास रखकर पढ़ने का बहाना बनाया। राम-राम करके जियाउद्दीन पेशावर पहुँचा।

पेशावर से उसे काबुल जाना था। पेशावर में इस कार्य में उसके कुछ इष्ट मित्रों ने उसकी बहुत मदद की। उन्होंने ही उसकी काबुल यात्रा का प्रबंध किया। १९ जनवरी को जियाउद्दीन काबुल के लिए रवाना हुआ। इस समय भी उसकी वेशभूषा पूरे पठान की थी। उसके साथ में था एक अन्य पठान—जिसका नाम बताया गया रहमत खाँ। रहमत खाँ अफगानी भाषा 'पश्तो' बोल लेता था। जियाउद्दीन बने तो थे पठान लेकिन पश्तो लिखना-पढ़ना तो दूर, बोलना भी नहीं जानते थे। मामला उलझन पूर्ण था। कोई कुछ पूछे तो किस भाषा में उत्तर दें। निश्चय हुआ कि वह गूँगे और बहरे व्यक्ति का-सा अभिनय करे। रहमत खाँ से जब पूछा जाता तो वह कहता, "मेरे बड़े भाई हैं—गूँगे और बहरे। जियारत के लिए हम लोग जा रहे है।" इस प्रकार जियाउद्दीन और रहमत खाँ काबुल पहुँचे।

काबुल में दोनों को एक गंदी सराय में ठहरना पड़ा। एक गुप्तचर की निगाह उनपर जा पड़ी। उसने पूछ-ताछ शुरू की। उन्हें थाने चलने का आदेश दिया। रहमत खाँ ने बहुत अनुनय-विनय की। दो रुपये भेंट लेकर ही वह गुप्तचर हटा। लेकिन वह तो हर दूसरे-तीसरे दिन आ धमकता और कुछ-न-कुछ भेंट लेकर ही टलता। विवश होकर उन्हें सराय छोडनी पडी।

रहमत खाँ काबुल में उत्तमचंद नामक एक देशभक्त भारतीय से मिला। उन्हें जियाउद्दीन का असली परिचय दिया। उत्तमचंद ने जियाउद्दीन और रहमत खाँ को अपने यहाँ कुछ दिनों रखा। जियाउद्दीन रूस जाना चाहता था। उत्तमचंद और रहमत खाँ रूसी दूतावास के चक्कर काटते रहे, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली। फिर इटली के राजदूत से उन्होंने भेंट की और सारा मामला बताया। इटली के राजदूत ने उनकी मदद की। उसकी सहायता से जियाउद्दीन २८ मार्च को सकुशल बर्लिन पहुँचे।

जियाउद्दीन के वेश में थे हमारे नेताजी सुभाषचंद्र बोस।

खून से हस्ताक्षर

रंगून में आजाद हिन्द फौज में भर्ती होने के लिए हजारों युवक-युवतियों की भीड़ लगी थी। जुबली हाल ठसाठस भरा हुआ था। हजारों लोग अपने प्रिय नेता सुभाष बाबू के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके आते ही 'नेताजी जिन्दाबाद,' 'जयहिन्द' आदि नारों से आकाश गूँजने लगा। थोड़ी ही देर में नेताजी ने अपना भाषण आरंभ किया—"स्वतंत्रता बलिदान चाहती है। आप लोगों ने आज़ादी के लिए बहुत त्याग किया है, किन्तु अभी प्राणों की आहुति देना बाकी है। हमें ऐसे नवयुवकों की आवश्यकता है, जो अपने हाथों से अपना सिर काटकर स्वाधीनता के लिए निछावर कर सकें। आप मुझे अपना खून दें, मैं आपको आज़ादी दूँगा।"

सभा में बैठे हजारों नवयुवक पुकार उठे, "हम अपना खून देंगे।" सुभाष बाबू ने एक प्रतिज्ञा-पत्र आगे बढ़ाते हुए कहा, "आप लोग इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर दीजिए।"

भीड़ में से कुछ नवयुवक हस्ताक्षर हेतु आगे बढ़े। तब सुभाष बाबू ने कहा, "इस प्रतिज्ञा-पत्र पर साधारण स्याही से हस्ताक्षर नहीं करना है। वही आगे बढ़े जिसकी नसों में सच्चा भारतीय खून बहता हो, जिसे अपने प्राणों का मोह न हो और जो आज़ादी के लिए सर्वस्व त्याग करने के लिए तैयार हो।"

हस्ताक्षर करने के लिए जो भीड़ आगे बढ़ी उसमें सबसे पहले सत्रह लड़कियाँ थीं। उन्होंने अपनी कमर से छूरियाँ निकाल कर अपनी अंगुली पर घाव किया और बहते खून से प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए।

तुलादान

सिंगापुर में नेताजी के जन्मदिन की तैयारियाँ हो रही थीं। उस दिन भारतीयों ने नेताजी का तुलादान करने का निश्चय किया। स्त्रियाँ अपने आभूषण समर्पित करने के लिए व्यग्र हो उठीं—सुहाग के वे चिह्न भी जिन्हें वे प्राण देकर भी अपने से अलग नहीं करती। नेताजी ने प्रत्येक भारतीय के हृदय में बलिदान की तीव्र भावना उत्पन्न कर दी थी।

तुलादान आरंभ हुआ। एक वृद्धा गुजराती महिला ने अपने जीवन भर की संचित संपत्ति सोने की पाँच ईंटें तराजू पर रख दीं। उसके उपरांत सभी स्त्रियों ने अपने-अपने आभूषण पलड़े पर रखना आरंभ कर दिया। "इंकलाब, जिन्दाबाद," 'सुभाष बाबू अमर रहें" के गगन भेदी नारे लगा रहे थे। सोने के आभूषण, सोने की मूर्तियाँ, सिक्के सभी कुछ चढ़ाया जा रहा था। "अभी और सोने की आवश्यकता है" एक आवाज़ आई। आसपास खड़ी हुई स्त्रियों ने कानों के कुंडल, हाथ की चूड़ियाँ और अंगूठियाँ उतार-उतारकर चढ़ाना शुरू किया। परंतु अभी भी कुछ कमी थी।

इतने में एक ओर से रोने की आवाज़ आई। रानी झांसी रेजीमेंट की कमांडर लक्ष्मीबाई और उनकी दो सहायिकाएँ एक युवती को सहारा देकर ला रही थी। युवती सिसक रही थी। नेताजी ने लक्ष्मीबाई की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा। उन्होंने बताया, "कल समाचार आया है कि बहिन के पति मोर्चे पर बीरगति को प्राप्त हो गए।" सुभाष ने उस पति-वियोग से संतप्त युवती के सम्मान में अपनी टोपी उतार दी। रोते हुए इस तरुणी ने नेताजी को नमस्कार किया और सिन्दूर से पोता हुआ शीशफूल "सौभाग्य चिह्न" पलड़े पर रख दिया। सभी की आँखों में जल भर आया।

नेताजी ने उस युवती से कहा, "देवता तुम्हारी पद रज लेने के लिए लालायित होंगे ।" सोना फिर भी पूरा नहीं हुआ ।

इतने में एक अत्यंत क्षीणकाय वृद्धा आई । अपने वक्ष से एक चित्र चिपकाए हुए थी । वृद्धा ने रुँधे हुए कंठ से कहा, "यह मेरे इकलौते पुत्र का चित्र है, नेताजी । युद्ध के पहले ही सिंगापुर में अंग्रेजों ने इसे फाँसी पर चढ़ा दिया था । काश, विधाता ने मुझे दूसरा पुत्र दिया होता तो मैं उसे भी माँ के चरणों में चढ़ा देती ।"

वृद्धा ने चित्र को जमीन पर पटक दिया । शीशा चूर-चूर हो गया । उसने चित्र निकालकर हृदय से लगा लिया और सोने के फ्रेम को पलड़े पर चढ़ा दिया । तराजू का काँटा बराबर हो गया । तुलादान पूरा हो गया । सुभाष बाबू तराजू से उतरकर खड़े हो गए और बोले, "कौन कहता है कि भारत आज़ाद नहीं होगा ? माँ का वर-दान व्यर्थ नहीं जा सकता ।" यह कहकर सुभाष ने झुककर वृद्धा के चरण छुए ।

—सी० एल० मिश्र

प्रश्न-अभ्यास

१. सुभाष ने आई०सी०एस० का पद अस्वीकार क्यों कर दिया ?

२. किस नेता को सुभाष ने अपना राजनैतिक गुरु माना ?

३. अंग्रेज सरकार ने किन परिस्थितियों में सुभाष को उनके घर में ही नजरबंद रखा ?

४. सुभाष का घर छोड़कर अफगानिस्तान होते हुए जर्मनी पहुँचने का रोमांचक वर्णन करो ।

५. सुभाषचंद्र बोस 'नेताजी' के नाम से कैसे प्रसिद्ध हुए ?

६. "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूंगा" इस कथन में सुभाष का क्या उद्देश्य था ?

७. भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में नेताजी के योगदान का उल्लेख करो ।

८. आजाद हिन्द फौज का गठन कब और क्यों हुआ ?

९. प्रस्तुत पाठ के आधार पर नेताजी सुभाष बोस की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालो।

१०. 'अपनी रोटी में से' शीर्षक घटना में आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?

११. 'अन्याय और अत्याचार को सहन करना सुभाष पाप समझते थे' बचपन की किसी घटना का वर्णन करते हुए इस कथन की सार्थकता सिद्ध करो।

९.

सरदार भगत सिंह

भारतीय स्वतंत्रता की बलिवेदी पर जिन सपूतों ने अपने प्राणों की आहुति दी है, उनमें सरदार भगत सिंह का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दों में, "भगत सिंह का नाम सुनते ही हृदय में बिजली-सी कौंध जाती है। मानवीय दुर्बलताएँ दूर हो जाती हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको भावुकता के एक नए संसार में पाता है।"

गांधीजी के असहयोग आंदोलन के साथ-साथ स्वतंत्रता के लिए देश विदेश में एक और आंदोलन की लहर चल रही थी, जो क्रांतिकारी आंदोलन के नाम से जाना जाता है। लाला हरदयाल, राजा महेन्द्र प्रताप, बरकतुल्ला तथा भगतसिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह ने इस आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। पंजाब, उत्तर प्रदेश और बंगाल सहित इस आंदोलन की शाखाएँ देश के अनेक अंचलों और विदेशों में भी फैली हुई थीं। भगत सिंह इस भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन में सर्वाधिक जाज्वल्यमान नक्षत्र बनकर जगमगा उठे थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उन्होंने सशस्त्र संघर्ष को अनिवार्य बताया और स्वयं इस मार्ग पर चलकर संसार के समक्ष बलिदान की बेजोड़ मिशाल प्रस्तुत की। फलतः वे युवकों के प्रेरणा-स्रोत बन गए। क्रांतिकारी आंदोलन को उन्होंने समाजवादी विचार-धारा से जोड़कर उसे एक नई दिशा भी प्रदान की।

सरदार भगत सिंह का जन्म अक्तूबर सन् १९०७ में पंजाब के लायलपुर (अब पाकिस्तान में) ज़िले में हुआ था। उनकी माँ का नाम विद्यावती, पिता का नाम किशन



सरदार भगत सिंह

सिंह और दादा का नाम अर्जुन सिंह था। देश-प्रेम और स्वतंत्रता-संघर्ष की भावना परिवार के इन सभी व्यक्तियों की धमनियों में प्रवाहित हो रही थी। भगत सिंह के बचपन में पिता किशन सिंह, चाचा स्वर्ण सिंह तथा अजीत सिंह विदेशी शासन के कारागार में बंद थे। राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत इस प्रेरक वातावरण ने बालक भगत सिंह पर अमिट प्रभाव डाला और उनमें क्रांतिकारी भावनाओं का बीजारोपण किया।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा गाँव की एक पाठशाला में हुई। फिर दयानंद ऐंग्लो वैदिक कालेज, लाहौर से उन्होंने मैट्रिकुलेशन पास किया। उन दिनों भारतीयों पर विदेशी सरकार द्वारा तरह-तरह के जुल्म ढाए जा रहे थे। लोग आँसू के घूंट पीने को मजबूर थे। इस विदेशी अत्याचार के विरुद्ध युवक भगत सिंह के हृदय में विद्रोह की अग्नि धधक उठी और उनका मन स्कूली शिक्षा से उचट गया। वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़ने के लिए आतुर हो उठे। राष्ट्रीय-आंदोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने रौलेट ऐक्ट लागू किया जिसके विरोध में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन का नारा दिया। पंजाब में इस आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। छात्रों ने सरकारी स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार किया। भगत सिंह ने पढ़ाई छोड़ दी और वे असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। बाद में असहयोग आंदोलन तो वापस ले लिया गया पर भगत सिंह ने तो कुछ कर गुजरने के लिए कमर कस ली थी।

आंदोलनों के ठंडा पड़ जाने पर भगत सिंह नेशनल कालेज में दाखिल हुए। यहीं इनकी मित्रता भगवतीचरण, यशपाल और सुखदेव से हुई, जो आगे चलकर सशस्त्र क्रांति में इनके सहयोगी बने। सन् १९२३ में भगत सिंह बी० ए० प्रथम वर्ष में प्रविष्ट हुए। इन्हीं दिनों वे क्रांतिकारी आंदोलन के सक्रिय सदस्य हो गए।

भगत सिंह की दादी जयकौर और पिता सरदार किशन सिंह ने उन पर विवाह करने के लिए दबाव डाला। पर क्रांतिकारी भगत सिंह को पिता का यह आग्रह स्वीकार न था। उन्होंने पिता को पत्र लिखा, "मेरी जिन्दगी हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए समर्पित हो चुकी है। इसलिए मेरी जिन्दगी में आराम और सांसारिक इच्छाओं का आकर्षण नहीं है।"

इसके बाद सरदार भगत सिंह फरार हो गए और पढ़ाई का सिलसिला भी समाप्त हो गया। अब उन्होंने कानपुर को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यहाँ रहकर भगत सिंह ने दल को आतंकवाद से ऊपर उठाने का सफल प्रयास किया। यहीं इनकी भेंट प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता गणेशशंकर विद्यार्थी से हुई।

भगत सिंह ने रूस, फ्रांस और आयरलैंड के क्रांतिकारी-आंदोलन का अध्ययन किया और उनसे प्रेरणा प्राप्त की। कहते हैं, "बहरों के कान खोलने के लिए विकट धमाके जरूरी हैं।" भगत सिंह भी विदेशी हुकूमत को ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए जरूरी तैयारियों में लग गए। सन् १९२५ में क्रांतिकारियों ने कांकोरी के पास चलती ट्रेन रोककर सरकारी खजाना लूट लिया। यह घटना कांकोरी-कांड के नाम से प्रसिद्ध है।

८ नवंबर १९२७ को ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि भारत के शासन सुधारों की जाँच करने के लिए इंगलैंड से भारत में एक आयोग आएगा जिसकी अध्यक्षता श्री साइमन करेंगे। भारतीयों ने साइमन आयोग के बहिष्कार का निर्णय किया। साइमन आयोग के पंजाब पहुँचने पर वहाँ के देश-प्रेमियों ने लाला लाजपतराय के नेतृत्व में आयोग का जोरदार विरोध किया। भगत सिंह ने इस आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन का दमन किया और इसी में पुलिस अधिकारी जे० पी० सांडर्स के डंडे से 'पंजाब-केसरी' लाला लाजपत राय बुरी तरह घायल हो गए। इसके कुछ समय बाद १७ नवंबर १९२८ को लालाजी का निधन हो गया। उनकी मृत्यु ने आग में घी का काम किया। भगत सिंह और उनके क्रांतिकारी सहयोगियों ने संकल्प लिया कि वे इसका बदला लेकर ही दम लेंगे।

१८ दिसंबर १९२८ को लाहौर की पुलिस कोतवाली से जब सांडर्स बाहर निकल रहा था, भगत सिंह ने अपने चुने हुए क्रांतिकारी मित्रों के साथ सांडर्स को गोलियों से भून डाला। इस तरह उन्होंने खून का बदला खून से लिया। हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र सेना ने इस गोली-कांड पर क्रांतिकारी की नीति स्पष्ट करते हुए लाहौर की दीवारों पर पोस्टर चिपकाए।

"मनुष्य का खून बहाने के लिए हमें खेद है, परंतु क्रांति की वेदी पर रक्त बहाना अनिवार्य हो जाता है। हमारा उद्देश्य ऐसी क्रांति से है जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत कर देगी।"

इस घटना के बाद सरदार भगत सिंह विदेशी सरकार की नजर में सबसे अधिक खतरनाक व्यक्ति बन गए। पुलिस हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गई थी। उनकी आँखों में धूल झोंकने के लिए सरदार भगत सिंह ने लंबे केश कटवा डाले। सूट-बूट पहने साहबी पोशाक में वे एक दिन लाहौर से कलकत्ता पहुँच गए।

भारत के क्रांतिकारी आंदोलन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सरदार भगत सिंह ने चंद्रशेखर आज़ाद और बटुकेश्वर दत्त के परामर्श से धारा सभा पर बम फेंकने की योजना बनाई। बमों के धमाके से बहरी बनी सरकार को चेतावनी देना इसका मूल उद्देश्य था। योजना को ठोस रूप देने के लिए क्रांतिकारियों ने ८ अप्रैल १९२९ की तिथि निश्चित की। इसका एक विशेष कारण था। इसी दिन वायसराय द्वारा धारा-सभा में सुरक्षाविधेयक और व्यापार विवाद विधेयक की घोषणाएँ की जाने वाली थीं। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने मित्रों की सहायता से धारा सभा में जाने के लिए प्रवेश-पत्र प्राप्त कर लिया।

जिस समय वायसराय घोषणा करने वाले थे, ठीक उसी समय सरकारी बेंचों के पीछे वाली खाली जगह पर सरदार भगत सिंह ने क्रम से दो बम फेंके। जोरदार धमाकों से कान के परदे हिल उठे। एसेम्बली हाल धुँए से भर गया। उस समय साइमन भी वहाँ उपस्थित था। खतरे की आशंका से ही वह सबसे पहले रफूचक्कर हो गया। अंग्रेज अधिकारियों में भगदड़ मच गई। पर राष्ट्रीय नेता मोतीलाल नेहरू और पंडित मदन मोहन मालवीय अपनी कुर्सियों पर शांति से बैठे रहे।

सरदार भगत सिंह चाहते तो इस अवसर पर आसानी से भाग सकते थे। लेकिन उनका उद्देश्य भागना नहीं था। वे विदेशी सरकार को क्रांतिकारियों के फौलादी इरादों और उद्देश्यों से परिचित करना चाहते थे। अतः बटुकेश्वर दत्त के साथ अपनी जगह पर

खड़े रहे और उन्होंने धारा-सभा में परचे भी फेंके। इसके बाद वे तुरंत बंदी बना लिए गए। परचों के कुछ वाक्य इस प्रकार थे:

"जनता के चुने हुए प्रतिनिधि, अपने निर्वाचन क्षेत्र में लौट जाएँ और जनता को आगे आने वाली क्रांति के लिए तैयार करें।···व्यक्तियों की हत्या कर डालना आसान है, लेकिन तुम विचारों की हत्या नहीं कर सकते।"

"हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्जवल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण शांति और स्वतंत्रता का उपयोग करेगा हम मानव-रक्त बहाने के लिए अपनी विवशता पर दुखी हैं, परंतु क्रांति के लिए मनुष्यों का बलिदान आवश्यक है।"

सरदार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त पर धारा-सभा बमकांड और लाहौर षडयंत्र के अभियोग लगाए गए। सरदार भगत सिंह ने अपने बचाव का कोई प्रयास नहीं किया। वे तो मातृभूमि पर प्राण निछावर करने को तैयार बैठे थे। अदालतों का उपयोग उन्होंने अपने क्रांतिकारी आंदोलन के प्रचार के लिए किया। इन अवसरों पर दिए गए उनके बयानों से विदेशी सरकार के काले कारनामों का पर्दाफाश हो गया। कारावास के दौरान राजनैतिक कैदियों को जेल में सामान्य अपराधियों से अलग दर्जा दिलवाने के लिए सरदार भगत सिंह ने लंबी भूख हड़तालें भी कीं और सरकार को अपनी माँगें मनवाने के लिए विवश किया।

न्याय भगत सिंह के पक्ष में था और सारे देश की सहानुभूति उनके साथ थी। लेकिन सरकार उन्हें किसी भी प्रकार समाप्त करने पर तुली थी। पर उनके साथ न्याय का नाटक किया गया। परिणाम पहले से ही ज्ञात था। सरदार भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को फाँसी का दंड सुनाया गया। इस अवसर पर भगत सिंह ने बटुकेश्वर दत्त को जो ऐतिहासिक पत्र लिखा वह पठनीय है।

"मुझे दंड सुना दिया गया है और फाँसी का आदेश हुआ है। इन कोठरियों में मेरे अतिरिक्त फाँसी की प्रतीक्षा करने वाले बहुत-से अपराधी हैं।···परंतु उनके बीच शायद मैं ही एक ऐसा आदमी हूँ जो बड़ी बेताबी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ,

जब मुझ अपने आदर्श के लिए फाँसी के फंदे पर झूलने का सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं खुशी के साथ फाँसी के तख्ते पर चढ़कर दुनिया को दिखा दूँगा कि क्रांतिकारी अपने आदर्शों के लिए कितनी वीरता से बलिदान कर सकते हैं।"

२२ मार्च १९३१, सेन्ट्रल जेल लाहौर। १४ नंबर वार्ड में रहनेवाले बंदी क्रांतिकारियों ने भगत सिंह के पास एक पत्र भेजा, "यदि फाँसी से बचना चाहते हो तो बताओ। अब भी कुछ हो सकता है।"

भगत सिंह ने जो मार्मिक उत्तर भेजा, उसे पढ़कर हर देशवासी का सीना गर्व म फूल उठता है।

साथियो,

"मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाब पार्टी का निशान बन चुका है। आज मेरी कमजोरियाँ लोगों के सामने नहीं है। अगर मैं फाँसी से बच गया तो वे प्रकट हो जाएँगी और इन्कलाब का निशाना मद्धिम पड़ जाएगा या शायद मिट ही जाएगा। लेकिन मेरे दिलेराना ढंग से हँसते-हँसते फाँसी पाने की सूरतमें हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगत सिंह बनने की इच्छा किया करेंगी और देश की आज़ादी के लिए बलिदान होने वालों की संख्या इतनी बढ़ जाएगी कि इन्कलाब को रोकना अंग्रेज सरकार के बस की बात नही रहेगी।"

भगत सिंह के चरित्र एवं सिद्धांतों की झलक देने के लिए उनके जीवन से कुछ प्रसंग नीचे लिखे जा रहे हैं:

अपनी मान्यताओं में अडिग विश्वास

२३ मार्च १९३१ जीवन का अंतिम दिन। प्रातः ही चीफ वार्डन सरदार चतर सिंह ने भगत सिंह की कोठरी का दरवाजा खटखटाया और बड़े प्यार भरे शब्दों में कहा, "अब तो अंतिम समय आ पहुँचा है। मैं तुम्हारे बाप के बराबर हूँ, मेरी एक बात मान लो।"

भगत सिंह, "कहिए, क्या हुक्म है ?"

चतर सिंह, "मेरी केवल एक प्रार्थना है कि आप आखिरी वक्त में तो 'वाह गुरु' का नाम ले लो और 'गुरुवाणी' का पाठ कर लो ।" भगत सिंह बड़े जोर से हँसे और बोले, "अगर कुछ समय पहले कहते तो शायद यह इच्छा पूरी कर ही देता। अब, जबकि आखिरी वक्त आ गया है, मैं परमात्मा को याद करूँ तो वह कहेगा कि यह कायर है। तमाम उम्र तो इसने मुझे याद किया नहीं। अब मौत सामने नज़र आने लगी है तो मुझे याद किया है। इसलिए बेहतर यह होगा कि मैंने जिस तरह पहले जिन्दगी गुजारी है उसी तरह मुझे इस दुनिया से जाना चाहिए। मुझपर यह इल्जाम तो कई लोग लगाएँगे कि मैं नास्तिक था, लेकिन यह तो कोई नहीं कहेगा कि भगत सिंह डरपोक और बेईमान भी था, और अंतिम समय मौत को सामने देखकर उसके पैर लड़खड़ाने लगे।"

फाँसी लगने के कुछ समय पूर्व भगत सिंह अपनी काल-कोठरी में लेनिन का जीवन-चरित्र पढ़ रहे थे। वह कुछ ही पन्ने पढ़ पाए थे कि कोठरी का दरवाज़ा खुल गया। जेल के अधिकारियों ने कहा, "सरदारजी, फाँसी लगाने का हुक्म आ गया है, आप तैयार हो जाएँ।" भगत सिंह के दाहिने हाथ में पुस्तक थी। उन्होंने पुस्तक पर से बिना आँख उठाए बाँया हाथ उन लोगों की ओर उठा दिया और कहा, "ठहरो, एक क्राँतिकारी दूसरे क्राँतिकारी से मिल रहा है।" उनकी आवाज़ में इतनी बेफिक्री थी कि अधिकारी आश्चर्य में पड़ गए। कुछ और पढ़कर भगत सिंह ने पुस्तक छत की ओर उछाल दी और कोठरी से बाहर आ गए। सुखदेव और राजगुरु उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अब भगत सिंह बीच में थे और राजगुरु तथा सुखदेव उनके दाँए-बाँए। भगत सिंह ने गाना प्रारंभ किया :

"दिल से निकलेगी न मरकर वतन की उल्फ़त,
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आएगी।"

लाहौरी षड्यंत्र केस में भगत सिंह को फाँसी की सजा मिली। उन्हें प्राणों की अपेक्षा अपने सिद्धांत अधिक मूल्यवान लगे। अतः अपने बचाव का उन्होंने प्रयास नहीं

किया। भगत सिंह के पिता ने भगत सिंह को निर्दोष सिद्ध करने के लिए अदालत में प्रार्थना-पत्र दिया। भगत सिंह नहीं चाहते थे कि अपने साथियों को फाँसी के फंदे पर चढाने के लिए छोडकर वे किसी तरह बच जाएँ। अत: नाराज होकर उन्होंने पिता को एक पत्र लिखा। इससे उनकी बलिदानी भावनाओं और सिद्धांतों पर प्रकाश पड़ता है।

पूज्य पिता जी,

"···मेरा जीवन इतना मूल्यवान नहीं है, जितना आप समझते हैं। कम-से-कम मेरे लिए इस जीवन का इतना महत्त्व नहीं है कि इसे सिद्धांतों की अमूल्य निधि को बलिदान करके बचाया जाए। मेरे और साथी भी हैं, जिनके अभियोग इतने ही भारी हैं, जितना कि यह मेरा अभियोग।...हम एक दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर अंतिम क्षण तक खड़े रहेंगे। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि व्यक्तिगत रूप में इस निश्चय का कितना मूल्य चुकाना पड़ता है।...मैं आज भी किसी मूल्य पर अपना बचाव उपस्थित करने के पक्ष में नहीं हूँ।"

धारा सभा बम-कांड द्वारा भगत सिंह का उद्देश्य किसी की हत्या करना नहीं था। वह इसके माध्यम से सार्वजनिक क्रांति को आंदोलन का रूप देना चाहते थे। अत: उन्होंने अदालतों में अपने बचाव की कोशिश करने के बजाय 'क्रांति' और 'इन्कलाब' जैसे शब्दों पर प्रकाश डाला। अतिरिक्त मजिस्ट्रेट मिस्टर पूल की अदालत में दिया गया उनका बयान पठनीय है। उसका कुछ अंश निम्नलिखित है :

"क्रांति, बम और पिस्तौल की संस्कृति नहीं है। क्रांति से प्रयोजन यह है कि अन्याय पर आधारित वर्तमान अवस्था में परिवर्तन लाना चाहिए।···यदि सभ्यता के ढाँचे को समय रहते न बचाया गया तो वह नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी। अत: क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है जो लोग इस आवश्यकता का अनुभव करते हैं, उनका कर्तव्य है कि वे समाज को समाजवादी आधारों पर पुनर्गठित करें।···क्रांति मानव-जाति का जन्मजात अधिकार है।"

—श्यामनारायण

प्रश्न-अभ्यास

१. बालक भगत सिंह को राष्ट्रीयता की प्रेरणा कैसे प्राप्त हुई ?

२. भगत सिंह ने साडर्स की हत्या क्यो की ?

३. भगत सिंह ने धारा सभा में बम क्यो फेंके ?

४. क्रांति से भगत सिंह का उद्देश्य क्या था ?

५. धारा सभा में बम फेंकने के बाद भगत सिंह क्यों नही भागे ?

६. अदालत मे उन्होने अपने कार्यों का औचित्य किस प्रकार सिद्ध किया ?

७. भगत सिंह ने पिता द्वारा प्रार्थना-पत्र दिए जाने पर नाराजगी भरे-पत्र में क्या लिखा ?

८. भगत सिंह भारत के लिए कैसी समाज-व्यवस्था चाहते थे ?

९. क्रांतिकारी आंदोलन का संक्षिप्त परिचय दो।

दो मित्र

(एकांकी)

(पर्दा उठने पर रंगमंच खाली है)

बाजार का दृश्य है। रात हो गई है, इसलिए सब दुकानें बंद हो चुकी हैं। सड़क सुनसान पड़ी है। इक्के-दुक्के चलने वालों की तो बात दूर, कोई कुत्ता तक बाजार के इस हिस्से में नहीं दीखता। लगता है, किसी साधारण शहर के साधारण से बाजार का कोई बहुत मामूली हिस्सा है। सभी रात के पहले पहर में निर्जीव हो गया है।

सड़क के आखिरी कोने पर एक लैम्प-पोस्ट है जो रोता हुआ-सा खड़ा रोशनी दे रहा है। हवा के चलने पर कभी-कभी किसी दुकान का साइनबोर्ड हिलकर थोड़ी आवाज पैदा कर फिर खामोश हो जाता है।

अचानक लेटरबक्स और एक दुकान के बीच से काले कपड़ों से ढंकी एक छाया-सी दर्शकों की ओर पीठ कर उठ खड़ी होती है। धीरे-धीरे वह दर्शकों की ओर मुड़ती है और तब हम देखते हैं कि वह काले चेस्टर से आवृत एक नवयुवक है। क्योंकि बाजार के उस भाग में रोशनी कम है, इसलिए हमें नवयुवक का चेहरा स्पष्ट रूप से नहीं दिखता। वैसे नवयुवक ने भी अपनी ओर से कुछ ऐसा प्रयास कर रखा है कि उसकी आकृति स्पष्ट न हो। उसने चेस्टर के कालर खड़े कर रखे हैं और सिर का हैट तिरछा कर रखा है।

खासी बेचैनी के साथ वह अपनी कलाई घड़ी देखता है और सड़क के दोनों छोर पर एक इंतजार भरी नजर डालता है। शायद ओठों ही ओठों में कुछ कहता भी है।

तभी जूतों की आहट होती है, फिर मुंह से सीटी बजाने की आवाज होती है।

इंतजार करता नवयुवक चौंककर एक झटके के साथ उधर देखता है।

बाईं ओर से एक नवयुवक पुलिसमैन बड़ी ही मस्त लापरवाही के साथ इधर-उधर देखता हुआ बाजार के उस हिस्से में प्रवेश करता है।

अचानक उसकी दृष्टि दूसरी ओर मुँह किए नवयुवक पर पड़ती है। वह शीघ्रता से उस ओर बढ़ता है। नवयुवक मुस्कराने की कोशिश करता है।

पुलिसमैन : कहिए मिस्टर, आप इस दुकान की आड़ में खड़े-खड़े क्या कर रहे हैं ?

नवयुवक : कुछ भी नहीं।

पुलिसमैन : कुछ भी नहीं ! आखिर कोई मकसद तो होगा आपके इस तरह से खड़े रहने का ?

नवयुवक : क्यों ? यहाँ इस तरह खड़ा होना कोई गुनाह है ?

पुलिसमैन : (स्वर में तेजी आती जाती है) जरूर है। रात के दस बजे, जब कि बाजार की तमाम दुकानों को बंद हुए एक घंटा हो चुका है, आप इस लेटरबक्स की आड़ में शुबहे की हालत में छिपे खड़े हैं। इसपर आप पूछते है कि इस तरह खड़ा होना गुनाह है।

नवयुवक : ओह ! तो आपको सब कुछ बताना ही होगा। कहानी जरा लम्बी है, मगर...

पुलिसमैन : (बात काटकर) आप उसे छोटी कर सुनाइए।

नवयुवक : तो सुनिए। दरअसल मैं यहाँ अपने एक दोस्त की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ। आज से तेरह साल पहले, ठीक इसी जगह, ठीक इसी समय हमने तय किया था कि तेरह साल बाद, यानी आज की तारीख को हम लोग दस बजे रात इसी जगह मिलेंगे।

पुलिसमैन : (हँसकर) बहुत खूब !

नवयुवक : आप को ये बातें कुछ अजीब-सी लग रही होंगी । सुनने पर ये सचमुच ही अजीब लगती हैं, मगर यकीन मानिए, सच है, बिल्कुल सच । तेरह साल पहले इस आधुनिक ढंग की दुकान की जगह चाय का एक मामूली-सा होटल था—किशन सिंह का होटल ।

पुलिसमैन : (कुछ याद-सा करता हुआ) हाँ पाँच-छह साल हुए, वह होटल गिरा दिया गया और उसकी जगह यह दुकान बनी । किशन सिंह बीमार होकर मर गया ।

नवयुवक : जरूर मर गया होगा । वह दमे का मरीज था । और दमा तो दम के साथ ही जाता है ।···वैसे भी इंसान को एक-न-एक दिन तो मरना होना ही है । दमा न भी होता उसे तो भी वह किसी-न-किसी बहाने मरता ही ।

पुलिसमैन : हाँ । बात तो ठीक है । उमर तो पक चुकी थी उसकी···(जेब से सिगरेट निकालकर) माचिस होगी आपके पास ?

नवयुवक : (चेस्टर की जेब में हाथ डाल) हाँ, हाँ (माचिस देता है)

पुलिसमैन : (माचिस लेते हुए) शुक्रिया ! ...

(पुलिसमैन दियासलाई जलाकर अपनी सिगरेट सुलगाता है । उसका दियासलाई जलाने का तरीका ऐसा है कि उस रोशनी में नवयुवक के चेहरे की झलक तो दीख जाए, मगर स्वयं उसके चेहरे पर प्रकाश न पड़े, अंधकार ही रहे ।)

नवयुवक : कितनी अजीब-सी कहानी है । कभी-कभी खुद को भी यकीन नहीं होता । ...आज से ठीक तेरह साल पहले यानी इक्कीस नवंबर उन्नीस सौ सैंतालीस को, जिस साल हमें आज़ादी मिली थी—आज के दिन इसी समय मैंने अपने दोस्त कैलाश के साथ किशनसिंह होटल में तीन नंबर की चाय पी

थी। किशनसिंह की बनाई चाय के नंबर हुआ करते थे—एक नंबर की चाय हलकी, दो नंबर की मध्यम तेज और तीन नंबर की स्पेशल हुआ करती थी...

पुलिसमैन : (सिगरेट का धुँआ छोड़ता हुआ) हाँ...मैं भी अक्सर उसके होटल में आया करता था। आपने अपने दोस्त का क्या नाम बताया था ?

नवयुवक : कैलाश...कैलाशचंद्र...कैलाश बहुत ही अच्छा लड़का था। बहुत ही नेक और ईमानदार। हम लोग एक अरसे तक बिल्कुल साथ रहे—दाएँ और बाएँ हाथ की तरह। मैं उन्नीस साल का था और वह शायद बीस का। दूसरे दिन सवेरे ही मैं अपनी भाग्य-परीक्षा के लिए बंबई जाने की पूरी तैयारी कर चुका था। कैलाश इस शहर से बाहर जाने के लिए तैयार न था। उसका कहना था कि वह इसी शहर में नौकरी करेगा। बस, उसी रात चाय पीते-पीते हम लोगों ने तय किया था कि ठीक तेरह साल बाद हम लोग इसी जगह पर और इसी समय फिर इकट्ठा होंगें। हम लोग चाहे जिस हालत में हों, और चाहे जितनी दूर से हमें आना पड़े, हम लोग जरूर आएँगे।

पुलिसमैन : (मुस्कराता है) बड़ी दिलचस्प बात है···(कुछ रुककर) लेकिन तेरह साल का समय तो बहुत होता है। अलग होने के बाद इस बीच क्या आप लोगों को एक-दूसरे की कोई खबर नहीं मिली ?

नवयुवक : नहीं, कुछ अरसे तक तो हम लोगों की चिट्ठी-पत्री चलती रही—शायद उन दिनों तक हम दोनों ही बेकार और परेशान थे। फिर मैंने अपने लिए काम ढूंढ़ निकाला। कैलाश को भी शायद काम मिल गया होगा—ऐसा मेरा ख्याल है। उसके बाद तो मैं अपने काम-धंधे में कुछ ऐसा फँसा कि साँस तक लेने की सुध नहीं रही। कैलाश की भी उसके बाद कोई चिट्ठी नहीं आई।

पुलिसमैन : क्या धंधा करते थे आप बंबई में ?

नवयुवक : (चौंककर) कुछ नहीं···(कुछ हिचकिचाता-सा) बस, ऐसे ही व्यापार···

पुलिसमैन : (गंभीर भाव से) ओह !

नवयुवक : (बात टालने की कोशिश करता हुआ) मुझे पक्का विश्वास है, कैलाश अगर जिंदा होगा और जिंदा तो वह होगा ही—तो आज वह मुझसे यहाँ जरूर मिलेगा, क्योंकि वह वायदे का बड़ा पक्का है। वह कभी नहीं भूल सकता कि आज इस समय उसे यहाँ पहुँचना है। मैं खुद आठ-सौ मील दूर बंबई से यहाँ आया हूँ, हालाँकि अपने व्यवसाय की उलझनों के कारण मेरा आना मुमकिन नहीं था···अगर कैलाश आ गया तो मेरी इतनी लंबी दौड़ सार्थक हो जाएगी···और वह आएगा जरूर।

(दूर कहीं किसी घंटाघर में दस के घंटे बजते हैं।)

पुलिसमैन : लीजिए मिस्टर, दस भी बज गए।

नवयुवक : (अपनी कलाई घड़ी में देखता हुआ) हाँ। ठीक दस। उस रात भी जब हम एक-दूसरे से अलग हुए थे तो ठीक दस बजे थे।

पुलिसमैन : अच्छा मिस्टर, मैं तो चलता हूँ। आशा करता हूँ कि आपके दोस्त साहब आपसे मिलने आने ही वाले होंगे। आप अभी कितनी देर और उनका इंतजार करेंगे !

नवयुवक : (फिर घड़ी देखता है) कोई पंद्रह-बीस मिनट और। अगर कैलाश जिंदा है तो वह दस-पंद्रह मिनट के अंदर-अंदर जरूर आ पहुँचेगा।

पुलिसमैन : (पीछे हटता हुआ) अच्छा साहब, तो इंतजार कीजिए। मैं चलता हूँ। अगर मुझे रास्ते में मिस्टर कैलाश मिल गए तो मैं उनसे कह दूँगा कि जनाब आपके दोस्त···(रुककर) क्या नाम है आपका ?

नवयुवक : मदन।

पुलिसमैन : हाँ, जनाब, आपके दोस्त मदन लेटर-बक्स के पास आपका इंतजार कर रहे हैं।

नवयुवक : (हँसकर) शुक्रिया।···लेकिन आप कैलाश को पहचानेंगे कैसे ?

पुलिसमैन . (हँसकर) आपको कैसे पहचाना था ?

नवयुवक : नाम पूछकर।

पुलिसमैन : ठीक ! इसी तरह कैलाश को पहचान लूँगा।

नवयुवक : बहुत मेहरबानी होगी। अच्छा तो नमस्ते।

पुलिसमैन : (तेजी के साथ, सड़क की दाईं ओर बढ़ते हुए) नमस्ते।

नवयुवक : (मुस्करा कर, हाथ हिलाते हुए) धन्यवाद···।

(पुलिसमैन मंच के बाहर चला जाता है।)

नवयुवक : (साँस छोड़कर) आखिर चला गया। मैं तो समझा था कि मेरी छाती पर ही अड़ा रहेगा। खैर था आदमी बड़ा मजेदार। कहता था कि कैलाश को भेज देगा, जैसे वह कैलाश को देखते ही पहचान लेगा।···(हँसकर) ये पुलिस वाले भी अपने को खुदा ही समझते है। (जेब से दियासलाई और सिगरेट निकालकर सिगरेट सुलगाता है। (धुँआ छोड़ते हुए) कैलाश।··· पता नहीं किस हालत में मिलता है कैलाश मुझे।···मेरी तरह पैसा तो क्या कमाया होगा उसने ! सीधा-साधा-सा लड़का था। इम्तिहान में नकल तक तो कर नहीं सकता था।···भला क्या किया होगा उसने जिंदगी में। आज का जमाना उस जैसे सीधे और ईमानदार लोगों के लिए थोड़े ही है। आज तो वही कामयाब हो सकता है जो दुनिया को कुछ देने के बजाय दुनिया से कुछ वसूल कर सके···(चौंकता है, पीछे मुड़कर देखता है) शायद कैलाश हो !

(उत्सुकता से आगे बढ़कर देखता है दाईं ओर से एक व्यक्ति का मंच पर प्रवेश। वह ठिठककर खड़ा हो जाता है और नवयुवक वाली दिशा में देखने लगता है।)

(नवयुवक कुछ आगे बढ़ता है। अब व्यक्ति भी उसे देख लेता है और थोड़ा आगे बढ़ता है।)

नवयुवक : (आशंकित स्वर में) कैलाश !

व्यक्ति : (चौंककर थोड़ा और आगे बढ़ते हुए) कौन ? मदन !

नवयुवक : (प्रसन्न स्वर में) हाँ मैं ही हूँ।

(आगे बढता है। दोनों दोस्त एक-दूसरे के गले मिलते हैं।)

नवयुवक : यार, तुम तो पहले से दुबले हो गए हो।

व्यक्ति : भाई, ये सब तो चलता ही रहता है। तुम अपनी कहो। इतने साल बाद तुमने दर्शन तो दिए। मैं तो समझ बैठा था कि तुम बंबई की भीड़ में खो गए।

नवयुवक : कमाल है ! बंबई की भीड़ में खोने पर भी मै तुम्हें भूल थोड़े ही सकता था।...पता है, मैं बीस मिनट से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास था कि तुम अगर जिंदा हो तो यहाँ ज़रूर आओगे।

व्यक्ति : भई आता कैसे नहीं ? आना बहुत ज़रूरी था।

नवयुवक : (मुस्कराकर) अच्छा ! देखो, तेरह साल का अरसा कुछ कम नहीं होता। कहते हैं—बारह साल में तो घूरे के भी दिन बदल जाते हैं। अपने किशन सिंह का होटल तो यहाँ रहा नहीं। नहीं तो वहीं बैठकर चाय पीते, गप-शप करते। बताओ, इस बीच तुम पर कैसी गुजरी ? क्या कर रहे हो आजकल ?

व्यक्ति : कुछ नहीं। मैं तो नगरपालिका में क्लर्क हूँ। तुम अपनी कहो। बड़े ठाठ हैं तुम्हारे...(नवयुवक को ऊपर से नीचे तक देखता है) लगता है, बंबई में खूब पैसा कमाया है।

नवयुवक : (हँसकर) अरे कहाँ यार। यों ही बहुत थोड़ा-सा।

व्यक्ति : (उत्सुकता से) तब भी ? कितना।

नवयुवक : (हँसकर) अरे यार ऐसे ही। बीस-बाइस हजार।

व्यक्ति : (आश्चर्य के साथ) बीस-बाइस हजार।...पर कैसे भाई ? यहाँ तो एक हजार भी जमा नहीं हुआ और तुमने इतनी रकम जमा कर ली।...इसका राज क्या है ?

नवयुवक : (सिगरेट नीचे फेंककर उसे पैर से कुचलते हुए) कोई राज नहीं है मेरे सीधे-सादे दोस्त। यह तो सीधा खेल है। बस, इसके लिए थोड़ी हिम्मत और थोड़ी चतुराई की जरूरत होती है। आज का जमाना ही ऐसा है। मैंने चतुराई और हिम्मत से काम लिया और पैसे वाला बन गया। तुम चतुराई के नाम पर पसीना-पसीना हो जाते थे, इसलिए तुम आज महज मामूली आदमी हो...और शायद जिंदगी-भर महज मामूली आदमी ही रहोगे।

व्यक्ति : (उत्सुकता के साथ) तुम क्या निकड़म करते थे ?

नवयुवक : तुमसे क्या छिपाना कैलाश। तुम तो दोस्त हो अपने। मेरा खेल तो सीधा था। लोगों से पैसा लेकर छोटी-मोटी कंपनियाँ बनाकर उसके बाद एक दिन अचानक उनका दीवाला निकाल देना—यह सब तो मेरे बाएँ हाथ का काम है।

व्यक्ति : और दाएँ हाथ का क्या काम है ?

नवयुवक : जब भी मैंने व्यापार किया, दो बहियाँ रखीं। अपनी सही आमदनी कभी नहीं बतलाई और हर साल गलत बही दिखला कर आयकर देने से मुक्ति पाता रहा...बस, पैसा, अपने आप इकट्ठा होता चला गया।

व्यक्ति : पर मदन, यह तो धोखा है—सरकार के साथ, अपने देश के साथ। यह सरासर नीचता है।

नवयुवक : होगी कैलाश...। अपने-अपने विचार है। और सच तो यह है कि मैं अपनी सरकार और अपने देश के लिए नही, अपने लिए, अपने सुख-आराम के लिए, जी रहा हूँ।

(चुप्पी छा जाती है)

नवयुवक : तुम क्या सोचने लगे कैलाश ?

व्यक्ति : (चौंककर) कुछ नहीं। तुम्हारी ही बात सोच रहा हूँ। अच्छा आओ, इस सड़क के अगले मोड़ पर एक दुकाननुमा होटल है। वह इस वक्त खुला होगा। वहीं चलते हैं। कुछ देर चैन से बैठ हम लोग अपनी-अपनी कह सुन सकेंगे।

नवयुवक : हाँ हाँ, चलो।

(दोनों सड़क की दाईं ओर चलते हैं और लैंपपोस्ट के पास आ जाते हैं। नवयुवक व्यक्ति की ओर रोशनी में देखता है और अचानक ठिठक जाता है।)

नवयुवक : (घबराए से स्वर में) लेकिन कैलाश।...तुम...तुम कैलाश नहीं हो।

व्यक्ति : (दायाँ हाथ जेब में) डालते हुए मैं कैलाश नहीं हूँ ? (मुस्करा कर) तुम क्या कह रहे हो मदन ?

नवयुवक : (स्वर में घबराहट है) मैं ठीक कह रहा हूँ। तेरह साल एक लंबा अरसा होता है। उस पर भी तेरह साल में किसी आदमी की नाक अचानक पकौड़े जैसी नहीं फूल सकती...(व्यक्ति की आँखों में देखते हुए) और न ही उसकी आँखें बिल्ली की तरह कंजी हो सकती हैं।

व्यक्ति : (कड़े स्वर में) लेकिन तेरह साल में कोई अच्छा आदमी बुरा ज़रूर बन सकता है...(तेज स्वर में) आप पिछले पाँच मिनट से कैदी हैं मिस्टर मदन।...आपकी ढेर सारी शिकायतें बंबई पुलिस के पास पहुँच चुकी हैं...

एक हफ्ते से पुलिस आपकी तलाश में है.. लेकिन आपको पकड़ने का सौभाग्य हमें मिलना था न ? सो मिल ही गया। (नवयुवक का हाथ पकड़ता है)

(अवाक् खड़ा नवयुवक अचानक बिजली की भाँति तेजी से हाथ छुड़ाकर भागने की कोशिश करता है, पर तभी व्यक्ति अपनी दाईं जेब से रिवाल्वर निकाल लेता है और भागते नवयुवक की ओर मोड़ लेता है।)

व्यक्ति : (चिल्लाकर) वहीं खड़े हो जाओ मदन। वरना गोली चला दूँगा।... एक।...दो।

(नवयुवक भागते-भागते रुक जाता है। पीछे मुड़ रिवाल्वर को देखता है और उसी तरह खड़ा हो जाता है।)

व्यक्ति : (नवयुवक के निकट आते हुए) अपने हाथ ऊपर करो।...भागने की तुम्हारी कोशिश बेकार है मदन। इस सड़क के दोनों हिस्से पुलिस से घिरे हुए है। बेकार की परेशानी होगी। (रिवाल्वर उसकी पीठ से सटाकर) चलो अब सीधे-सीधे पुलिस चौकी चलो...नजदीक ही है। (दोनों चलने लगते हैं) और हाँ, चलने से पहले इसी खंभे की रोशनी में—जिसमें तुमने मेरी शकल देखी है—अपनी यह चिट्ठी पढ़ लो।
(दोनों बिजली के खंभे के पास रुक जाते है। व्यक्ति नवयुवक को जेब से एक मुड़ा-तुड़ा कागज़ देता है।)

नवयुवक : (कागज़ लेते हुए) चिट्ठी ! ··· मेरी ?

व्यक्ति : हाँ, इंस्पेक्टर कैलाशचंद्र ने दी है ··· (रुककर) क्या मैं सुन सकता हूँ कि इसमें क्या है ?

नवयुवक : (फीकी मुस्कराहट के साथ) जरूर। इसमें लिखा है—
प्यारे मदन !

तेरह साल पहले किए अपने वायदे के अनुसार मैं उस जगह ठीक दस बजे

मौजूद था। तुम्हारा विश्वास ठीक था कि अगर मैं जिंदा हूँगा तो तुमसे मिलने ज़रूर आऊँगा। तुमसे माचिस माँगा सिगरेट सुलगाते हुए मैंने उस रोशनी में तुम्हारा चेहरा देखा—यह चेहरा उसी आदमी का था जिसकी तलाश बंबई पुलिस एक हफ्ते से कर रही है—इसलिए कि यह आदमी ४२० है।...मुझसे यह न हो सका कि मैं अपने हाथों तुम्हें गिरफ्तार करता। इस कारण मैं अपने एक होशियार मातहत को सादे कपड़ों में तुम्हें गिरफ्तार करने के लिए भेज रहा हूँ। मुझे अफसोस है कि तुम्हारा खेल सीधा और सच्चा न था।

तुम्हारा दोस्त,

कैलाश

व्यक्ति : और अब तो खेल भी खत्म हो गया है मिस्टर मदन।

(उसी तरह रिवाल्वर नवयुवक की पीठ से सटाए व्यक्ति का और उसके आगे-आगे नवयुवक का प्रस्थान)।

मंच खाली हो जाता है।

(तभी बाईं ओर से पुलिस इंस्पेक्टर कैलाश का अपनी पिछली ही वेशभूषा में प्रवेश। वह धीरे-धीरे लेटरबक्स तक जाता है और वहाँ खड़ा हो जाता है।)

पुलिस इंस्पेक्टर : (लेटरबक्स पर अपना सिर टेक, उदास और व्यथित स्वर में) तुमने इतना खतरनाक खेल क्यों खेला मदन?...अपने लिए न जीकर, अपने देश के लिए जीना इतना मुश्किल तो नहीं है।...तुम कोशिश तो करते।...(शायद आँखों के आँसू छिपाने के लिए अपना मुँह दूसरी ओर कर लेता है)।

(मंच पर खामोशी है। परदा गिरता है।)

—**सत्येन्द्र शरत**

प्रश्न-अभ्यास

१. पुलिस को नवयुवक पर संदेह क्यों हुआ ?

२. नवयुवक किससे मिलने आया था ? क्या उससे उसकी भेंट हुई ?

३. नवयुवक ने बंबई में काफी धन कैसे कमाया ?

४. नवयुवक को किसने गिरफ्तार कराया ? क्या उसे ऐसा करना चाहिए ?

५. इस एकांकी से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

एक था छोटा सिपाही

(लघु उपन्यास)

बहुत पुरानी बात नहीं। बात तब की है, जब चीनी फौजें हमारे देश की उत्तरी सीमा में घुसती-चली आ रही थीं।

लद्दाख हमारे देश का सुंदर बर्फ़ीला प्रदेश है। इस क्षेत्र की हर सुबह सुहावनी होती है। सफेद बादल आसमान पर नई कपास के बड़े-बड़े अंबारों की तरह तैरते-से लगते हैं। जैसा सुदरऔर निर्मल यह इलाका है, वैसे ही यहाँ के रहने वाले। बड़े भोले-भाले, मन के बर्फ़ जैसे उजले और सुबह की तरह शांत। इस क्षेत्र में यों तो अनेक गाँव बसे हैं, पर दक्षिणी किनारे पर बसा माँगचिंग गाँव बहुत सुंदर है। सीमा पर होने के कारण इस गाँव का सैनिक महत्त्व भी है। चीनी जब हमला करते हुए बढ़ रहे थे तब उनकी नज़र इस गाँव परलगी हुई थी। उन्हें मालूम था कि इस गाँव के इधर-उधर कहीं भारतीय फौजें हैं। भारतीय फौजों पर सामने से हमला करने से वे कतराते थे। इसी कारण उन्होंने पहले माँगचिंग पर कब्जा कर लेना ठीक समझा था।

मॉगचिंग में सामी नामक एक बूढ़ा किसान था। उसके खेत दक्षिणी किनारे पर थे। इसलिए उसे गाँव के इस एकदम एकांत क्षेत्र में जाकर खेतों की रात-बिरात रखवाली करनी होती थी। कभी-कभी सामी जब बहुत थक जाता था, तबउसका इकलौता बेटा सुरजा खेतों की रखवाली करने जाता था। सुरजा बड़ा फुरतीला होने के साथ-साथ साहसी भी था। खूब अँधेरी रात, जंगल की बात, जानवरों का भय, पर सुरजा कभी नहीं घबराता था। दोपहर तक स्कूल में पढ़ता था, बाकी समय खेती के काम-काज में अपने पिता का हाथ बँटाता था।

सुरजा अभी पंद्रह साल का ही था। इस छोटी उम्र में भी वह खूब तंदुरुस्त था। पढ़ाई में वह जितना होशियार था, उससे कहीं अधिक खेल-कूद का शौकीन था, सामी को यह पसंद नहीं था कि सुरजा यों खेल-कूद की तरफ अधिक ध्यान दे। वह चाहता था कि पढ़-लिखकर सुरजा कोई बड़ा अफसर बने। पर सुरजा बड़ा होकर फौज में भरती होना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि वह बहादुरी के करतब दिखाए और फौज में ही बड़ा अफसर बन जाए।

इधर कुछ दिनों में सुरजा को एक नया काम भी करना पड़ता था। उसे अपने पिता सामी को दोपहर का खाना खेत पर पहुँचाना पड़ता था। इस काम में एक लाभ यह था कि वह रास्ते में भारतीय फौजी चौकी पर घूमता हुआ आता था। दूर से सिपाहियों को देखकर वह बहुत खुश होता था, क्योंकि सिपाही उसे अच्छे लगते थे। वह फ़ौजी जिंदगी पसंद करता था।

उस दिन जब सुरजा स्कूल से घर लौटा, उसने देखा कि उसकी बहन कोनी एक कोने में सिर पर हाथ रखकर लेटी हुई है। कोनी सुरजा से तीन वर्ष छोटी थी। दोनों भाई-बहन एक दूसरे को बहुत प्यार करते थे। सुरजा उसे यों सुस्त देखकर उदास हो गया। उसने पूछा, "तेरी तबीयत खराब है क्या?"

"हाँ", कोनी ने करवट बदलकर कहा, "मैं आज खाना भी नहीं बना सकती। मेरे सिर में दर्द है।"

"कोई बात नहीं", सुरजा बोला, "मैं खाना बनाए लेता हूँ। दादा को तो रोटी पहुँचानी ही पड़ेगी।" यह कहकर वह फौरन खाना बनाने में जुट गया। बीच-बीच में उसे अपनी माँ की याद आ जाती, जो उन्हें बहुत छोटी उम्र में ही छोड़ गई थीं। यह पूछने पर कि माँ कहाँ हैं, सामी बहुत दिनों तक बच्चों को यह कहकर बहलाता रहा था कि वह मकई उगाने बादलों के पार गई है।

जल्दी-जल्दी रोटी बना-खाकर सुरजा ने अपने पिता का खाना एक टोकरी में लिया। कोनी से यह कहकर कि अभी आता हूँ, वह खेतों की ओर चला गया।

हर दिन की तरह सुरजा भारतीय फौजी चौकी के पास से निकला। उसने देखा कि कुछ सिपाही बंदूकें साफ़ करने में जुटे हुए हैं। सुरजा को बंदूक भी उतनी ही पसंद थी, जितनी फौजी ज़िंदगी। एक पल के लिए सुरजा जैसे सब कुछ भूल गया। वह वहीं रुककर कभी बंदूकों को, कभी सिपाहियों को देखने लगा।

उसे यों खड़ा देखकर एक सिपाही से न रहा गया। उसने पूछ ही लिया, "ऐ लड़के, इस तरह क्या देख रहे हो?"

"बंदूकें," सुरजा ने फौरन जवाब दिया, "मुझे बंदूकें अच्छी लगती हैं।"

"अच्छा!" सिपाही सुरजा के भोलेपन और मीठे उत्तर से खुश हुआ। उसने कहा, "तुम्हें बंदूकें अच्छी लगती हैं। तब तो तुम्हें हम जैसे सिपाही भी बहुत अच्छे लगते होंगे?"

"हाँ", सुरजा बोला, "मैं तो खुद ही सिपाही बनना चाहता हूँ पर मेरे पिता यह पसंद नहीं करते। अच्छा, तुम्हीं बताओ, क्या मैं सिपाही बन सकता हूँ?"

सुरजा की बात सुनकर सिपाही खुश ही नहीं हुआ, उसे उसके साहस पर आश्चर्य भी हुआ। सुरजा की इच्छा जानकर तो वह और भी प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "ज़रूर! तुम सिपाही बन सकते हो। पर अभी तुम छोटे हो। तुम्हारी ऊँचाई कम है और तुममें बंदूक उठाने की ताकत नहीं है। इसलिए तुम्हें कुछ दिन रुकना होगा। जब तुम बड़े हो जाओ तब सिपाही बन जाना। तब तुम्हारे पिता भी तुम्हें नहीं रोकेंगे।"

सुरजा का मुँह लटक गया। सिपाही बोला, "चिन्ता मत करो, तुम जल्दी ही बड़े हो जाओगे।" सुरजा को इससे तसल्ली नहीं हुई। वह वैसा ही उदास बना रहा। तब सिपाही ने उसकी उदासी दूर करने की एक नई तरकीब निकाली। उसने पूछा, "तुमने सोच लिया है कि सिपाही ही बनोगे?"

सुरजा ने सिर हिलाकर जवाब दिया, "हाँ।"

"अच्छा!" सिपाही ने कहा, "सिपाही बनने के लिए ट्रेनिंग लेनी पड़ती है। उसमें बहुत तकलीफ होती है। घुटने छिल जाते हैं। दौड़ने के कारण साँस चढ़

जाती है। छाती पर गोलियाँ झेलने की हिम्मत पैदा करनी होती है। क्या तुम इसके लिए तैयार हो?"

"हाँ," सुरजा बोला। उसके स्वर में ऐसा कड़ापन था, जैसे वह बच्चा नहीं, फौलाद का टुकड़ा हो।

"हूँ," सिपाही ने कुछ सोचते हुए कहा, "तो पहले तुम्हें ट्रेनिंग लेनी पड़ेगी। क्या तुम रोज मेरे पास आ सकते हो?"

"क्यों नहीं।" सुरजा ने खुश होते हुए कहा, "मैं प्रतिदिन अपने पिता के लिए इसी रास्ते से खाना पहुँचाने जाता हूँ। लौटते समय मैं तुम्हारे पास दो घंटे ट्रेनिंग लिया करूँगा।"

"ठीक", सिपाही बोला, "मैं तुम्हें बताऊँगा कि सच्चे सिपाही का क्या काम होता है। अभी तुम जहाँ जा रहे हो, जा सकते हो।"

सुरजा जाने लगा, पर सिपाही ने उसे रोका और कहा, "सुनो, अब हम दोस्त हो गए हैं। मैं सिपाही हूँ, तुम होने वाले सिपाही हो। हमारी तुम्हारी दोस्ती पक्की। मेरा नाम दयाराम है। तुम्हारा क्या नाम है?"

"सूरजसिंह," सुरजा ने बताया, "पर गाँव में सब लोग मुझे सुरजा कहते हैं। तुम भी मुझे सुरजा कह सकते हो।"

सिपाही दयाराम हँस पड़ा। सुरजा ने अपनी राह ली। बीच-बीच में वह पीछे की ओर मुड़-मुड़कर देखता रहा, सिपाही दयाराम अब भी उसी की ओर देख रहा था। वह खड़ा हुआ था और उसके बदन पर हरे रंग की फौजी वर्दी थी। सुरजा सोच-सोचकर खुश होता रहा, बड़ा सिपाही मुझे ट्रेनिंग देगा। फिर मैं भी सिपाही बनूँगा। ऐसी ही हरी वर्दी मेरे बदन पर होगी। ऐसे ही मैं भी किसी छोटे सिपाही को फौज के लिए तैयार करूँगा, जैसे दयाराम मुझे करने वाला है।

सिपाही दयाराम से सुरजा की दोस्ती हुए अभी कुछ ही दिन हुए थे। दयाराम बड़ी देर तक उसके साथ बैठा-बैठा तरह-तरह की गप्पें हाँकता रहता। उसने सुरजा को

खूब तेज़ दौड़ना, ऊँचाई से कूदना और नीचे से ऊपर की ओर चढ़ना आदि सिखा दिया। कभी-कभी उसके साथी सिपाही कहते, "दयाराम" तुम बेकार ही इस लड़के के साथ सिर खपाते हो।" वह हँस देता और कहता, "सुरजा आ जाता है तो मेरे मन को ठंडक मिलती है। ठीक इतना ही बड़ा बेटा है मेरा। गाँव में छोड़ आया हूँ। सुरजा से मन बहल जाता है।"

और यों अपना मन बहलाते-बहलाते दयाराम ने सुरजा को सचमुच अच्छा-खासा सिपाही बना दिया। वह पिस्तौल से निशाना साधना भी सीख गया और दुश्मन जब हमला करे तब बचाव कैसे करना चाहिए, यह भी वह जान गया। इनके अलावा भी दयाराम ने उसे बहुत कुछ सिखाया। उसने उसे सिपाही के कर्तव्य समझाए। उसने कहा, "दुश्मन अगर कभी पकड़ भी ले तो सिपाही को अपनी फौज के बारे में एक शब्द भी नहीं बोलना चाहिए। भले ही उसकी बोटी-बोटी काट दी जाए।"

सुरजा ने सब कुछ बड़े ध्यान से सुना।

सिपाही दयाराम ने कहा, "जो लोग अपने देश पर बलिदान होते हैं, उन्हें स्वर्ग में भगवान के बराबर आसन मिलता है।"

सुनकर सुरजा खुश हुआ। उसने निश्चय किया, "मैं सिपाही बनकर अपने देश पर बलिदान हो जाऊँगा। स्वर्ग में भगवान के बराबर आसन पाऊँगा।"

पर इधर कुछ दिनों से सुरजा और दयाराम का मिलना-जुलना कम हो गया था। कारण यह था कि सीमा के आस-पास चीनी फौजों की हलचल बढ़ गई थी। चौकी के अफसर की आज्ञा के अनुसार दयाराम को दिन-रात उस क्षेत्र में गश्त लगानी पड़ती थी। सुरजा अब भी अपने पिता को खाना देने जाता था। रास्ते में चौकी पर रुककर वह सिपाहियों से दयाराम के बारे में पूछता। कुशल-समाचार पाकर वह खुश हो जाता।

एक दिन ऐसे ही जब उसने दयाराम के बारे में पूछा तब उसे पता चला कि दयाराम गश्त से लौटा ही नहीं है। जंगल में वह अपने साथी सिपाहियों से कहीं बिछुड़ गया था। दो दिन से उसका पता ही नही चल रहा था। सुनकर सुरजा को बहुत दुख हुआ। उसे भय भी लगा, कहीं दयाराम दुश्मन चीनियों के हाथ न पड़ गया हो। ऐसा

होना अस्वाभाविक भी नहीं था। सुरजा को मालूम था कि उसके गाँव से कुछ ही दूरी पर दुश्मनों ने हमला किया है और उसके देश के सैनिक बहादुरी से उनका मुकाबला कर रहे हैं। सुरजा यह भी जानता था कि दुश्मन के गुप्तचर इधर-उधर गाँवों में नकली वेश बनाए, भारतीय फौजों के समाचार लेने को घूमते हैं। उसे अभी हाल की एक घटना याद थी, जब पास वाले गाँव में एक चीनी जासूस पकड़ा गया था। वह साधु का रूप धर, भेद लेने की टोह में घूम रहा था। सुरजा का खून खौल उठा। उसका मन हुआ कि अभी जंगल की ओर जाए और दयाराम की तलाश करे पर एक सिपाही ने उससे कहा, "चिंता मत करो। दयाराम की तलाश में कई सिपाही भेजे गए हैं। रात तक उसका पता मिल जाएगा।"

सुरजा मुँह लटकाकर लौट गया। उसका पिता सामी शहर गया हुआ था। वह सुरजा से कह गया कि घर ही रहना, नहीं तो कोनी अकेली रह जाएगी। सुरजा ने लाख चाहा कि वह घर ही रुका रहे, पर वह ऐसा न कर पाया। सामी सुबह लौटने वाला था। सुरजा चाहता तो तब तक रुक सकता था, किंतु न जाने क्यों वह सुबह होने तक धीरज नहीं रख सका। उसे दयाराम की बहुत चिंता थी। राम जाने, किस कठिनाई में फँस गया था वह? बहुत देर के सोच-विचार के बाद सुरजा ने निश्चय किया कि कोनी को समझा-बुझाकर थोड़ी देर के लिए चौकी पर जाकर दयाराम का हाल-चाल मालूम करेगा। उसने कोनी से पूछा, "तू घंटे-दो घंटे घर में अकेली रह सकती है न?"

"क्यों नहीं?" कोनी ने साहसपूर्वक जवाब दिया, "तुम्हें कहीं जाना है क्या?"

"हाँ, फौजी चौकी का मेरा दोस्त सिपाही दो दिन से कहीं भटक गया है। उसी का हाल जानने जाना चाहता हूँ।"

"ज़रूर जाओ।"

कोनी को मालूम था कि सुरजा फौजी सिपाही का मित्र है। कभी-कभी वह बात-चीत में उसे दयाराम के बारे में बताया भी करता था।

सुरजा बोला, "भीतर से दरवाज़ा बंद कर तू चुपचाप लेटी रहना। मैं जल्दी ही वापस आ जाऊँगा।"

"अच्छा।" कोनी ने उत्तर दिया।

सुरजा ने अपना ढीला और मोटा लबादा ओढ़ा। पैरों में मोटे तले के चोंचदार जूते पहने। कान से दो अंगुल ऊँचा मोटा-सा लट्ठ लिया और चौकी की ओर रवाना हो गया।

शाम का धुँधलका बढ़ने लगा था। वह धीरे-धीरे गाँव के अलावा बरफ के सफ़ेद पहाड़ों पर भी फैलता आ रहा था। सुरजा भी जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाता हुआ चौकी की ओर बढ़ता जा रहा था।

सुरजा जब चौकी पर पहुँचा तब तक अँधियारे ने सारे गाँव को घेर लिया था और चौकी पर भी रोशनी हो चुकी थी। सिपाही मुस्तैदी से इधर-उधर पहरा दे रहे थे। सुरजा को देखते ही एक सिपाही ने पूछा, "तुम कौन हो? रुक जाओ।" शायद वह सुरजा को अँधेरे की वजह से पहचान नहीं सका था।

सुरजा एकदम रुक गया। वह दयाराम की संगति में फौज के बहुत-से छोटे-छोटे कानून समझने लगा था। उसने वहीं से कहा, "मैं सुरजा हूँ।"

"अच्छा।" सिपाही बोला, "आ जाओ।"

दयाराम के कारण चौकी का हर सिपाही सुरजा को पहचानने लगा था। सुरजा सिपाही के पास आ गया।

"आज इतनी रात को तुम कैसे आए?" पहरेवाले सिपाही ने सवाल किया।

"मैं दयाराम के बारे में जानने आया हूँ", सुरजा ने अपने आने का कारण बताया। फिर उसने पूछा, "क्या उसका कुछ पता लगा?"

"नहीं" सिपाही ने उत्तर दिया, "हमने दयाराम की बहुत खोज खबर की, पर वह कहीं न मिला। उसकी खोज अभी भी जारी है। अंदेशा है कि वह दुश्मन के हाथों में गया है और उन्होंने उसे कैद कर लिया है।"

"ओह।" दुखी होकर सुरजा बोला, "यह तो बुरा हुआ। इसका मतलब तो यह हुआ कि दुश्मन चीनी माँगचिग गाँव के आस-पास ही कहीं हैं।"

"बिलकुल।"

"अच्छा, तो फिर मैं चलता हूँ।" उदासी और चिंता के मिले-जुले स्वर में सुरजा ने कहा और इससे पहले कि सिपाही उससे कुछ कहें, वह वापस हो लिया। दयाराम

दुश्मन के हाथों पड़ गया है, यह जानकर वह बेचैन हो उठा था। उसने सोचा दयाराम मेरा दोस्त होने के साथ-साथ देश का सिपाही भी है। उसकी जान बहुत कीमती है। तभी उसके मन में विचार आया, "क्या मैं दयाराम की तलाश नहीं कर सकता ?"... उसके मन ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं। मैं दयाराम की तलाश कर सकता हूँ, मेरे पास साहस की कमी नहीं है।" यह ध्यान आते ही सुरजा ने स्वयं दयाराम की तलाश करने और वश चला तो, उसे छुड़ा लाने का निश्चय किया।

रात बढ़ चली थी। चौतरफा झींगुर के स्वर तेज हो गए थे। सुरजा के पास रोशनी के लिए लालटेन भी न थी। किंतु वह बेखटके चला जा रहा था। वह भयभीत होना जानता ही नहीं था। ऐसे निडर बच्चे ही बड़े होकर देश का नाम ऊँचा करते हैं।

सुरजा घर पहुँचा। उसने कोनी को दयाराम के चीनियों के हाथ पड़ जाने की खबर सुनाई। उसने यह भी कहा कि मैं खुद दयाराम को ढूँढ़ने जाना चाहता हूँ। वह सोचता था कि शायद कोनी उसे जाने नहीं देगी और कहेगी कि उसे अकेले डर लगता है। पर सुरजा को आश्चर्य हुआ कि कोनी ने उसे फौरन जाने की सलाह दी। उसने कहा, "दयाराम तुम्हारा मित्र है। तुम्हें उसे जरूर ढूँढ़ना चाहिए।"

"हाँ।" सुरजा बोला, "मैं उसे ढूँढ़ने जाऊँगा और पता लगाकर चीनियों के चंगुल से छुड़ा लाऊँगा। पर तुझे यों अकेली छोड़ने का मेरा मन नहीं होता।"

कोनी ने सुरजा का मन डाँवाँडोल होते देखा तो उसे डर लगा कि कहीं सुरजा रुक न जाए। दयाराम उसका मित्र ही नहीं, देश का सिपाही भी है और उसे संकट से बचाना हर देशभक्त का कर्तव्य है। उसने अपनी तीसरी कक्षा की पुस्तक में पढ़ा था कि जो बच्चे कर्तव्य से विमुख होते है, वे जीवन में कभी सफल नहीं होते। उसने सुरजा को समझाया, "तुम मेरी बिलकुल चिन्ता न करो। मैं अब इतनी छोटी नहीं हूँ कि घर में अकेली न रह सकूँ ? तुम जाओ और अपने मित्र की तलाश करो।"

कोनी की साहस-भरी बातें सुनकर सुरजा को बड़ा हर्ष हुआ। उसकी हिम्मत भी बढ़ी। उसने एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में मोटा लट्ठ संभाला। वह बरफीले पहाड़ों में उस ओर चल दिया, जिधर के खतरनाक रास्तों पर उसका बूढ़ा पिता सामी उसे जाने नहीं देता था।

सुरजा जिन रास्तों पर आज लालटेन के धीमे उजाले के सहारे बढ़ता चला जा रहा था, वे उसने पहले कभी नहीं देखे थे। ये रास्ते बहुत खतरनाक थे। कहीं बर्फ़ से ढँकी ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं तो कहीं खूब नीचाई तक चले गए ढाल थे। इन रास्तों पर यहाँ-वहाँ ऐसे पेड़-पौधे भी थे जो केवल बर्फ़ गिरने वाली जगहों में पैदा हुआ करते हैं। यों सुरजा ने गाँव के आसपास की तमाम जगह दूर तक घूम रखी थी, पर कभी इस ओर आने का मौका उसे नहीं पड़ा था। एक बार उसने कोशिश भी की थी इस ओर आने की। वह घूमता-घामता कुछ दूर निकल भी गया था। पर जब घर लौटा था तब उसके पिता ने पूछा था, "तू कहाँ गया था?" यह बताने पर कि वह इस ओर घूमने निकल गया था, सामी ने उसे बहुत डाँटा-फटकारा, उसने कहा था, "शैतान लड़के, तुम उस तरफ फिर कभी मत जाना। उधर के रास्ते बहुत खतरनाक है। वहाँ बर्फ़ की ऐसी फ़ुसफ़ुसी पहाड़ियाँ हैं, जो कभी भी समूची धसक पड़ती हैं।"

सुरजा चुपचाप डाँट सुनता रहा था।

बूढ़े सामी ने उसे यह भी भय दिखाया था, "उधर कभी-कभी जंगली जानवर मिल जाते हैं। ऐसे जानवर जो पलक मारते ही आदमी को चट कर जाएँ। अब कभी उधर जाने की कोशिश मत करना।"

डाँट खाकर सुरजा ने फिर कभी उस ओर मुँह नहीं किया था। पर आज वह उसी रास्ते पर बढ़ा जा रहा था और वह भी रात के समय। उसका मित्र आपत्ति में जो फँस गया था। वह उसे छुड़ाना जो चाहता था।

लालटेन का प्रकाश इतना कम था कि सुरजा को राह में बड़ी सावधानी बरतनी पड़ रही थी। वह आँखें फाड़-फाड़कर बड़े ध्यान से रास्ता देखता और लकड़ी से बर्फ़ टटोलता, यह निश्चय करने के लिए कि बर्फ़ फ़ुसफ़ुसी तो नहीं है। दूर-दूर तक बर्फ़ीली पहाड़ियाँ फैली हुई थीं। उन पहाड़ियों में किधर कहाँ पहुँचना है, यह सुरजा को बिलकुल पता नहीं था। न ही उसे मालूम था कि दयाराम किधर होगा। पर वह बढ़ता चला जा रहा था। उसके पाँवों में न तो थकान थी, न उसकी हिम्मत में कमी।

सुरजा चलता गया। चलता गया। ऊपर आसमान में तारे निकल आए। यह उसका सौभाग्य ही था कि चाँदनी रात थी। चाँदनी के दूधिया उजाले में उसे रास्ता

पार करने में थोड़ी-बहुत सुविधा मिलने लगी। कभी-कभी रुककर वह लालटेन इधर-उधर घुमा-फिराकर पहाड़ियों पर नज़र दौड़ा लेता। सोचता, शायद दुश्मन का अड्डा आस-पास ही हो। पर अब तक दुश्मन का अड्डा तो क्या, बैठने लायक भी कोई जगह नज़र नहीं आयी थी।

ऐसे ही एक स्थान पर मुरजा ने रुककर इधर-उधर देखा। उसे पता चला कि वह बर्फ़ की एक ऊँची पहाड़ी की चोटी पर खड़ा है। और नीचे सैकड़ों मीटर गहरी खाई है। एक क्षण को तो उसके होश उड़ गए। कहीं मैं इसमें गिर पड़ता ? और यह विचार आते ही मुरजा का मन काँप गया। पर जल्दी ही उसने अपने मन का डर निकाल फेंका। वह सँभलता हुआ आगे बढ़ने लगा। अभी मुश्किल से दस कदम बढ़ पाया होगा कि उसकी दृष्टि अपने ठीक सामने खड़ी एक काली परछाईं पर पड़ी, जिसकी आँखों की जगह दो अंगारे चमक रहे थे। मुरजा ने एक बार घाटी की गहराई देखी, फिर टकटकी बाँधकर वह परछाईं को देखने लगा। वह अमावस की रात की तरह काली थी।

परछाईं धीरे-धीरे बढ़ रही थी। मुरजा अपने स्थान से तनिक भी नहीं हिला। परछाईं जब कुछ आगे आई, तब मुरजा ने पहचाना, वह खरगोश के आकार का कोई काला-सा जानवर था। उसकी आँखें किसी बड़े बिल्ले से भी तीखी और चमकने वाली थीं। मुरजा ने दाएँ हाथ में लट्ठ को मजबूती से पकड़ लिया और उससे मुकाबले के लिए तैयार हो गया।

कुछ दूर तक बर्फीले क्षेत्रों में पाया जाने वाला वह काला-सा बिल्ला धीमी चाल से चलता रहा। फिर एकाएक ही बड़ी फुरती से मुरजा की ओर लपका। मुरजा भी तैयार था। उसने समझदारी से काम लिया। उसने सोचा, "लकड़ी से तो यह शायद एकाएक न मरे और क्रोधित होकर मुझपर इतना जोरदार हमला कर दे कि मुकाबला करना कठिन हो जाए।" इसलिए उसने एक चाल चली। जैसे ही काला बिल्ला गुर्राता हुआ अपने तीखे दाँतों वाला मुँह फाड़ता उसकी ओर झपटा, मुरजा उछलकर एक ओर हो गया। बिल्ला अपनी गति पर काबू न पा सकने के कारण खाई में जा गिरा।

मुरजा ने लालटेन की रोशनी के सहारे खाई में झुककर देखा, पर वह खाई इतनी गहरी थी कि नीचे कुछ दिखाई नहीं देता था। मुरजा ने जान लिया कि उस गहरी खाई में गिरने के बाद उस शैतान बिल्ले की हड्डियों का कचूमर निकल गया होगा और वह

जिन्दा नहीं बचा होगा। सुरजा ने संतोष की साँस ली और आगे बढ़ गया।

आसमान में तारे अब भी चमक रहे थे। सुरजा को दूर तक ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता था, जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता कि आस-पास आदमी हो सकते हैं। सब तरफ बर्फ़ से ढकी पहाड़ियाँ थीं। सुरजा को लगा कि वहाँ उसके सिवा कोई नहीं था।

चलते-चलते दूसरे दिन की सुबह हो गई। सुरजा मांगचिंग से कई कि० मी० दूर निकल गया, पर दयाराम का कोई सुराग नहीं मिला। सूरज की किरणें जब पहाड़ियों पर गिरीं तब उनकी चमक दुगनी हो गई। जगह-जगह बर्फ़ यों चमकने लगी, जैसे धरती पर सैकड़ों-हज़ारों दर्पण बिछे हों।

सुरजा ने जल्दी में लालटेन बुझा दी। दूसरे ही क्षण उसे खयाल आया कि उसके पास दियासलाई नहीं है। उसे अपनी मूर्खता पर बड़ा दुख हुआ, क्योंकि यह निश्चित न था कि दयाराम का पता दिन में ही लग जाएगा। यह भी हो सकता था कि उसकी खोज में दूसरी रात भी काटनी पड़े। पर जो हो चुका उस पर विचार करने से क्या लाभ? सुरजा ने दियासलाई की चिन्ता मन से निकाल दी।

रात भर बर्फ़ीली हवाओं में चलते रहने के कारण सुरजा के हाथ-पैरों में ठिठुरन अनुभव होने लगी थी। जल्दी में वह अपने साथ अधिक कपड़े नहीं ला सका था। बर्फ़ के कारण उसकी पलकें एकदम ठंडी हो गई थीं और वह आँखों में थोड़ी-थोड़ी जलन भी अनुभव कर रहा था। उसने दिन होते ही सुस्ताने के लिए कोई जगह तलाश की, पर ऐसी कोई जगह नहीं दिखाई दी। सारी रात न सो सकने के कारण उसके शरीर पर अजीब-सा नशा छाया हुआ था। उसका मन होता था कि नींद की हलकी-सी झपकी ले ले। पर कर्त्तव्य की पुकार उसे ऐसा नहीं करने देती थी। उसे दयाराम को ढूँढ़ना था। उसने निश्चय किया कि, "मैं नहीं रुकूँगा, तब तक नहीं रुकूँगा, जब तक दयाराम का पता न लगा लूँगा।"

हर कठिनाई से लड़ता हुआ, सुरजा आगे बढ़ता गया। दोपहर के समय धूप तेज हुई तो पहाड़ियों में कहीं-कहीं बर्फ़ पिघलने लगी। चलते समय सुरजा के पाँव कहीं-कहीं फँसने लगते। लगातार मेहनत के कारण उसे भूख भी लग रही थी, पर वहाँ खाने

को क्या रखा था ? आगे बढ़ते जाने के अलावा और कोई चारा न था।

सूरज सिर पर आ गया। धूप तेज हो गई। सुरजा तनिक भी नहीं घबराया। उसने जल्दी-जल्दी रास्ता पार करने के लिए एक नई तरकीब निकाली। जब उसे ऊँचाई पर चढ़ना होता तब तो वह लकड़ी के सहारे सँभलता हुआ, धीरे-धीरे चढ़ता। परन्तु जब उसे नीची घाटी में उतरना होता तब वह ढाल पर बैठ कर फिसलना प्रारंभ कर देता और मोटी लकड़ी को दोनों हाथों में आगे से सहारे की तरह पकड़ लेता। तेज ढाल आने पर वह लकड़ी से ब्रेक लगा लेता। इस तरह वह रास्ता अधिक शीघ्रता से तय करने लगा।

ऐसी ही एक नीची घाटी से फिसलते समय उसकी नजर दूर सामने की ओर आगे बढ़ते जा रहे कुछ सिपाहियों पर पड़ी। समतल धरती पर पहुँचते ही सुरजा जल्दी से सिपाहियों की ओर दौड़ा। वह जल्दी-जल्दी उन तक पहुँच जाना चाहता था, क्योंकि देर करने से वे आस-पास की किसी पहाड़ी के आगे-पीछे या ओट में चले जाते और फिर उन्हें पा सकना असंभव हो जाता। उसने उन्हें देखते ही यह पहचान लिया था कि वे चीनी नहीं, हिन्दुस्तानी सिपाही थे।

सिपाहियों के पास आते-आते, पीछे से सुरजा ने आवाज़ लगाई, "रुक जाओ। रुक जाओ।"

सिपाही रुक गए।

सुरजा पास आ गया। वह हाँफ रहा था और उसकी कलाई में अटकी हुई लालटेन हिल रही थी।

सिपाही आश्चर्यपूर्वक उसका मुँह देख रहे थे। वे इस निर्जन इलाके में एक छोटे-से बच्चे को देखकर परेशान हो गए।

"तुम कौन हो ?" उन सिपाहियों में से एक ने पूछा।

"मैं...मैं...हूँ फ्फ, हफ्फा...सुरजा हूँ, माँगचिंग गाँव से आया हूँ।" सुरजा हाँफ रहा था।

"माँगचिंग ?" एक सिपाही ने दूसरे का मुँह देखा, "माँगचिंग गाँव में तो अपनी चौकी है। वह तो यहाँ से कम से कम तीस कि० मी० दूर है।"

"हाँ," दूसरे सिपाही ने कहा। फिर सुरजा से पूछा, "बच्चे, तुम इतनी दूर कैसे और क्योंकर आए हो ? जानते नहीं, यह इलाका बड़ा खतरनाक है। यहाँ हिम-मानव रहता है और आजकल दुश्मन चीनी फौजों का भी डर है।"

अब तक सुरजा का हाँफना थोड़ा कम हो गया था। उसने कहा, "मैं तुम जैसे ही एक सिपाही की खोज कर रहा हूँ। वह मेरा दोस्त है। उसका नाम दयाराम है। वह माँगचिंग चौकी पर काम करता था। सुनते हैं, वह चीनियों के हाथ पड़ गया है।"

"ओह !" उनमें से एक सिपाही बोला। फिर उसने दूसरे सिपाहियों की ओर देखा और कहा, "इसका मतलब यह है कि चीनी फौजें लगभग सत्तर कि० मी० तक घुस आई हैं।" फिर वह सुरजा से बोला। "लड़के, तुम घर जाओ। हम दयाराम की तलाश करते हैं।"

"नहीं" सुरजा ने निडर होकर उत्तर दिया, "मैं अपने दोस्त की खोज जरूर करूँगा। तुम भी उसकी खोज करो, पर मुझे वापस जाने की सलाह मत दो।"

सिपाहियों को सुरजा के साहस पर खुशी हुई। एक सिपाही बोला, "खैर ! हम तुम्हें नहीं रोकते, पर यह तो बताओ, तुम्हारे पास खाने-पीने को भी कुछ है या नहीं ?"

सुरजा ने जवाब दिया, "नहीं, मुझे बहुत भूख लगी है।"

"अच्छा आओ। पास ही अपनी चौकी है। वहाँ चलकर पहले कुछ खाओ। कुछ सामान अपने साथ लो, फिर अपने मित्र की खोज में चले जाना। हम भी खोज-खबर रखेंगे।"

सुरजा उनके साथ चल दिया। वह रास्ता पहचानने की कोशिश करता जाता था, ताकि आवश्यकता पड़ने पर इस चौकी पर लौट सके।

रास्ते में वे सिपाही सुरजा से बातें करते गए। बीच में उन्होंने एक गीत भी गाया जिसमें सुरजा ने भी अपनी धुन मिलाई।

सारे जहाँ से अच्छा,
हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी,
ये गुलिस्ताँ हमारा।

चौकी पर पहुँचने के बाद उन सिपाहियों ने सुरजा को भर पेट खाना खिलाया। फिर उसे एक फौजी थैला दिया, जो पीठ पर लटका लिया जाता है। उन्होंने सुरजा को बिस्कुटों के कुछ पैकेट, एक दियासलाई, भूख न लगने की गोलियाँ और ताकत की दवाई दी। सुरजा ने उन्हें थैले में रखा और 'जयहिन्द' कहकर वह फिर दयाराम की खोज में चल दिया।

अब उसमें नई ताजगी और उत्साह था, क्योंकि भूख मिटने के साथ-साथ आगे के लिए खाने का इंतजाम भी हो गया था। उसे सबसे बड़ी खुशी तो इस बात की थी कि उसे दियासलाई मिल गई थी। रात होने पर अब वह लालटेन जला सकता था और रात में भी दयाराम की खोज जारी रख सकता था।

चौकी से दूसरी दिशा में चलते हुए उसने कई पहाड़ियाँ पार कीं। धीरे-धीरे शाम होने लगी और सूरज ठंडा पड़ने लगा। सुरजा लगन के साथ बढ़ता ही रहा। जब साँझ का धुँधलापन बढ़ने लगा तब उसने लालटेन जला ली। अब वह ऊँचे-नीचे रास्तों पर सँभल कर चलने लगा। चलते-चलते सुरजा एक स्थान पर रुका। वहाँ से एक ओर तो खाईनुमा रास्ता चला गया था और दूसरी ओर की पहाड़ी में एक गुफा-सी दिखती थी। सुरजा असमंजस में पड़ गया। वह आगे बढ़ जाए या गुफा में तलाश करे? हो सकता है, चीनियों ने इसी गुफा में दयाराम को कैद कर रखा हो।

ठोड़ी पर हाथ रखे, देर तक सोचने-विचारने के बाद सुरजा ने गुफा में भीतर घुसकर दयाराम की तलाश करने का निर्णय किया। उसने पीठ पर बँधा हुआ फौजी थैला सँभालकर ठीक किया, लट्ठ मजबूती से पकड़ा और चौकन्ना होकर वह गुफा में घुस गया।

गुफा बड़ी दूर तक चली गई थी। सुरजा को लगा, जैसे इसका अंत ही नहीं होगा। पर वह डरा नहीं, गुफा में घुसता ही चला गया।

एकाएक उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि गुफा में सामने की ओर मामूली-सी रोशनी हो रही है। नई आशा के साथ सुरजा आगे बढ़ा। उसे गुफा का द्वार पा जाने पर बहुत खुशी हुई। साथ ही एक दुख भी था। वह यह कि गुफा के संबंध में उसने जो कुछ सोचा था वह एकदम गलत निकला।

वह गुफा में धीरे-धीरे बढ़ा चला जा रहा था। गुफा का वह रास्ता, अब उसे भयावह और कष्टदायक नहीं लग रहा था। पहाड़ी पर भले ही ठंडक रही हो, किन्तु गुफा में गरमी थी। अभी वह चला ही जा रहा था कि एकाएक चौंक पड़ा। उसने देखा कि गुफा के इस दूसरे द्वार के समीप रीछ जैसा कोई भयानक जानवर धरती पर लेटा सो रहा है। भय से सुरजा के पाँव काँपने लगे। इससे पहले उसने न तो कभी ऐसा विचित्र जानवर देखा था और न ही कभी किसी के मुँह से उसकी चर्चा सुनी थी। उसने लालटेन ऊपर उठाई, जिससे ठीक से देख सके। साधारण मनुष्य की अपेक्षा यह जानवर बहुत लम्बा था। उसके शरीर पर गुच्छेदार बाल थे। वह मनुष्यों की भाँति ही सो रहा था। उसके हाथ-पैरों और शरीर की बनावट मनुष्य से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी और पैरों के पंजे भी आदमियों जैसे ही थे। उसके नाखून इतने बढ़ चुके थे कि दूर से किसी छोटे-मोटे फावड़े की तरह लग रहे थे। संपूर्ण शरीर एक चट्टान की तरह धरती पर फैला हुआ था।

सुरजा उसे देखता ही रह गया। कितना भयानक था वह। अगर कहीं उसकी नींद खुल गई तो? सामी ने एक बार उससे ठीक ही कहा था, "तुम उस तरफ कभी मत जाना। वहाँ के रास्ते बहुत खतरनाक हैं। उधर कभी-कभी जंगली जानवर भी मिल जाते हैं। ऐसे जानवर जो तुम्हें पलक मारते ही चट कर जाएँगे।" सोचते-सोचते एकाएक सुरजा को उन सिपाहियों की बात याद हो आई, जिन्होंने हिममानव की चर्चा की थी। सुरजा अनायास ही वहाँ से भाग लिया। वह इतनी जोर से भागा कि फिर उसने बहुत दूर तक पलटकर पीछे नहीं देखा।

जब वह बहुत दूर निकल आया और उसे यह विश्वास हो गया कि अब हिममानव का खतरा नहीं है, तब कहीं उसने एक जगह रुककर चैन की साँस ली।

यह अच्छा ही हुआ कि रात होने से पहले ही सुरजा हिममानव वाली गुफा से बच निकला। कुछ देर एकांत में उसने आराम किया। फिर दयाराम की तलाश में आगे बढ़ा। धुँधलका, अब धुँधलका न रहकर रात बन गया था। यह रात भी, पिछली रात की तरह, भयावनी और कष्टदायक थी।

जो भी हो, सुरजा को आगे बढ़ना ही था। वह बढ़ रहा था। उसके पैरों में दर्द

सुबह से ज्यादा हो रहा था और थकान के साथ नींद के झोंके भी आ रहे थे।

एक ऊँची चढ़ाई पर पहुँचकर वह नीचे झुका ही था कि एकाएक उसकी दृष्टि तलहटी में घूमती हुई किसी चीज पर पड़ी। वह ठिठक गया। उसने सोचा, अब इस ओर से फिसलकर निकलना ठीक नहीं। शायद यह हिलने-डुलने वाली चीज कोई जंगली जानवर हो और नीचे पहुँचते ही वह उस पर हमला कर दे।

सुरजा के दिमाग में बिजली की तरह एक तरकीब आई। उसने दूसरे किनारे की ओर से उतरने का निश्चय किया। अभी वह उतरने ही वाला था कि उसने आश्चर्य से देखा, वह हिलने-डुलने वाली चीज एक जगह रुक गई है। उसके शरीर में कुछ हरकत हुई, फिर एकाएक हलका-सा प्रकाश पहाड़ी के इर्द-गिर्द फैल गया। सुरजा एक-दम दुबककर नीचे बैठ गया। उस तेज प्रकाश में उसने देखा, वह हिलने वाली चीज कोई जंगली जानवर नहीं, एक चीनी सैनिक था। थोड़ी देर बाद ही वह प्रकाश बुझ गया और चीनी सैनिक पहले की तरह चहल-कदमी करने लगा। सुरजा ने तुरंत ही अपनी लालटेन बुझा दी। उसको यह सोचकर खुशी हुई कि शायद वह चीनी कैंप तक आ पहुँचा है। वह कुछ देर वहीं रुका रहा। थोड़ी देर बाद फिर वैसा ही प्रकाश हुआ। इस तरह उसने यह जान लिया कि वह चीनी गश्ती सैनिक कितनी-कितनी देर बाद प्रकाश करता है। समय का अनुमान लगाकार सुरजा ने निश्चय किया कि इससे पहले कि वह सिपाही फिर प्रकाश करे, उसे पहाड़ी से नीचे उतर जाना चाहिए। उसने किया भी ऐसा ही। जल्दी ही वह पहाड़ी के दूसरे कोने से फिसला और इतनी तेजी से फिसला कि प्रकाश होने से पूर्व ही वह तलहटी में जा लगा। उसने कुछ देर वहीं दुबककर प्रकाश होने का इंतजार किया। जब प्रकाश होकर बुझ गया, तब रेंगते हुए उसने तलहटी को एक ओर से दूसरी ओर पार करना प्रारंभ किया।

ठिगने कद का वह चीनी सिपाही चहलकदमी करता हुआ जब सुरजा की ओर आता, तब सुरजा रेंगना बंदकर जहाँ का तहाँ लेटा रह जाता। जब सिपाही पलटकर दूसरी दिशा में चलने लगता, तब सुरजा सपाटे से रेंगने लगता। दूसरा किनारा पास आ चला था। तभी एकाएक सिपाही रुका। सुरजा समझ गया कि अब वह अपनी विशेष बैटरी जलाकर चौतरफा प्रकाश करने वाला है वह पहले से अठगुनी फुर्ती के साथ

किनारे की ओर रेंगा। जब तक सिपाही ने रोशनी की, सुरजा किनारे की ओट में छिप चुका था। कुछ क्षण रोशनी फैली रही, सुरजा पहाड़ी की ओर दुबका-दुबका हाँफता रहा। उसे काफी फुर्ती से रेंगना पड़ा था। जब उजाला बंद हो गया। तब उसने फिर आगे बढ़ना प्रारंभ किया। वह हर कदम बहुत चौकन्ना होकर रख रहा था और आगे बढ़ रहा था।

कुछ दूर पहुँचने पर उसने देखा कि पहाड़ियों की खूब नीची तलहटी में चीनी फौजों के तंबुओं का एक जाल-सा बिछा हुआ था। हलकी-हलकी रोशनी हो रही थी। इतनी हलकी कि दूर से यह पहचानना कठिन था कि यह किस देश के सिपाहियों का फौजी कैंप है। चीनी तंबुओं के आस-पास कहीं कोई झंडा नहीं था, ताकि कोई पहचान न सके। वहाँ कोई शोर-शराबा भी नहीं था। शायद इसलिए कि कहीं भारतीय फौजों तक उनके यों सीमा में घुस आने की खबर न पहुँच जाए। सुरजा जिस पहाड़ी पर खड़ा हुआ यह सब देख रहा था, उसके आस-पास उससे भी ऊँची पहाड़ियाँ थीं। अब तक वह इन पहाड़ियों की ओर ध्यान न दे सका था। सामने की तलहटी में फैले, चीनी फौज के तम्बुओं को देखने में वह इतना मशगूल हो गया था कि उसका इधर-उधर ध्यान ही न गया। जैसे ही उसने सिर उठाकर ऊपर की ओर देखा, उसकी तो जैसे जान ही निकल गई। दाँई ओर की ऊँची पहाड़ियों पर चीनी सैनिक दिखाई दिए। वे उसे झुककर देख रहे थे। शायद उन्हें उसके हिलने-डुलने से संदेह हो गया था।

एकाएक जब उस पर प्रकाश पड़ना प्रारंभ हुआ तब वह घबरा गया। बचाव का कोई रास्ता न सूझने के कारण उसने पहाड़ी पर हाथ-पैरों के सहारे किसी जानवर की तरह उछलना-कूदना प्रारम्भ कर दिया, ताकि चीनी समझें कि वह कोई आदमी नहीं बल्कि जानवर है। उसने मुंह से अजीब-सी आवाजें भी निकालीं—'की···कीं···की···घुर्र···र्···घुर्र···र्र्···र्···र्···!'

ऊँची पहाड़ी के चीनियों में हलचल मच गई—वां! ···चिंग···मिंग···ती ई सुई— सुंग!

और भी न जाने क्या-क्या?

अब अधिक उछलना ठीक नहीं था। किसी जानवर के संदेह में कहीं वे गोली न

चला बैठें ? अतः सुरजा वैसे ही उछलता हुआ पहाड़ी के एक किनारे तक गया और जल्दी से ढाल से फिसलकर और नीचाई में चला गया। इसी बीच उसे गोली छूटने की आवाज़ सुनाई दी। उसका संदेह सही था। ऊँची पहाड़ी वाले चीनी पहरेदारों ने उसकी उछल-कूद देखकर उसे जानवर समझा था और गोली चला दी थी।

सुरजा ने तसल्ली की साँस ली। फिसलने की जल्दी में वह नीचे आते-आते लुढ़क पड़ा था। उसकी नाक और मुँह का कुछ हिस्सा छिल गया था। फिर भी वह यह जानकर बहुत खुश था कि इस तरकीब से वह एक बहुत बड़े खतरे से बच गया था। यदि चीनियों को उसके आदमी होने का शक हो जाता तो उसे गिरफ्तार करते उन्हें देर न लगती।

सुरजा अब बहुत सँकरी और ओटदार जगह पर आ पहुँचा था। अब वह ऊँचाइयों पर तैनात चीनी पहरेदारों की दृष्टि से पूरी तरह बचा हुआ था। उनकी टार्चें भी इतनी रोशनी वाली नहीं थीं कि उनका प्रकाश वहाँ तक आ सकता। पर वह सुरक्षित नहीं था। इस नीचाई ने उसे चीनी कैंप के इतने निकट पहुँचा दिया था कि वह हर पल अपने आस-पास खतरा अनुभव कर रहा था।

अब उसने एक ऐसी पहाड़ी पर चढ़ना प्रारंभ किया जहाँ से वह यह पता लगा सकता था कि चीनियों द्वारा पकड़े गए लोगों को कैद करने की जगह कौन-सी है ? वह सँभल कर चढ़ता गया और बीच-बीच में चारों ओर देखता भी रहा। चोटी पर पहुँचने के बाद झुके-झुके ही उसने देखा कि ठीक उसके सामने काँटों के तारों वाला एक विशाल बाड़ा था। उसके दूसरे छोर पर एक चौकोर पंडाल जैसी जगह में कुछ सिपाही और उसके गाँव मे पहनी जाने वाली वेश-भूषा के आदमी खड़े थे। बाड़े के एक कोने पर उसने कुछ चीनियों को भी देखा, जो फौजी वेश-भूषा के अलावा बन्दूक और स्टेनगनें लिए इधर-उधर देख रहे थे। सुरजा ने समझ लिया, शायद यही वह जगह है, जहाँ कैदियों को रखा गया है। उसने बाड़े की ओर अनेक तंबू भी लगे देखे। इससे वह समझ गया कि चीनी फौजें दूसरे छोर से दूर पहाड़ियों में फैली हुई थीं।

समस्या थी कि कैदियों के पास तक कैसे पहुँचा जाए ? हालाँकि छोटा लड़का होने के कारण वह फुर्ती से काँटों के तारों वाली जगह में घुसकर भीतर जा सकता था,

पर इस बाड़े और उसके दूसरे किनारे पर कैदियों के तंबू के बीच एक बड़ा मैदान था। उसमें रोशनी रहने के कारण न तो रेंगकर जाया जा सकता था और न चलकर। देर तक पहाड़ी पर वैसे ही झुका-झुका सुरजा तरकीब सोचता रहा। जब कोई रास्ता न दिखा तब उसने निर्णय किया कि वह बाड़े में उस ओर से घुसेगा, जिधर से तंबू तक पहुँचने के लिए मैदान को पार नहीं करना पड़े। ऐसा करने के लिए उसने चक्कर लगाकर पहाड़ियों के बीच से ही निकलना ठीक समझा। जिस पहाड़ी पर वह चढ़ चुका था, उसी से वह पुनः उतरा और फिर तलहटी के भीतर ही भीतर चक्कर लगा कर बाड़े के कोने तक पहुँचने की चेष्टा करने लगा। वहाँ तक पहुँचने के लिए सुरजा को करीब दो कि०मी० तक फिर से पहाड़ियों में ही चक्कर काटना पड़ा। इस बीच उसने अपने को कितने ही गश्ती चीनी पहरेदारों से बचाया। वह कभी रेंगा, कभी दौड़ा और यों छिपता-छिपाता बाड़े तक जा ही पहुँचा। उसे आश्चर्य हुआ कि उस जगह कोई सैनिक तैनात न था, जबकि किसी के घुसने की संभावना सबसे अधिक वहीं थी। पर दूसरे ही क्षण उसे यह समझ में आ गया कि वहाँ पहरे की विशेष जरूरत नहीं थी, क्योंकि थोड़ी दूर पर ही फ़ौजी तंबू थे और उनमें एक नहीं, सैकड़ों-हजारों सिपाही थे।

ओट में दुबके-दुबके जब उसने यह देख लिया कि आस-पास कोई नहीं है, तब बड़ी फुरती से दौड़ता हुआ वह काँटों के तारों तक पहुँचा। फिर उसने उन तारों के बीच अपने घुसने लायक मार्ग देखा। और एक बार चारों तरफ नज़र दौड़ाकर छिपकली की तरह रेंगकर वह बाड़े में घुस गया। बाड़े में घुसते ही उसने अपना सामान संभाला और तेज दौड़ लगाकर वह अचानक कैदियों के तंबू में जा पहुँचा।

कैदी चौंक गए। सुरजा ने देखा, वहाँ तिब्बती और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की एक भारी भीड़ कैद थी। एक-दो कैदी तो उसे देखकर फुसफुसाने भी लगे। वे ऐसी भाषा में बोल रहे थे, जो न हिन्दी थी और न उसके गाँव की लद्दाखी भाषा। शायद वे तिब्बती भाषा में बातचीत कर थे। यह बातचीत इस तरह हो रही थी, जैसे चूहे धीमी-धीमी आवाज करते हैं। सभी आश्चर्यचकित होकर सुरजा को देख रहे थे। सुरजा की आँखें उस भीड़ में दयाराम को ढूँढ़ रही थीं। उसने देखा कि कैदियों के चेहरे सूखे और बुझे-बुझे से लगते थे। वे बहुत कमज़ोर हो गए थे मानो काफी समय से उन्हें पेट

भर कर भोजन नहीं मिला था। इस बाड़े मे गंदगी भी बहुत थी। शायद जान-बूझकर चीनियों ने कैदियों के तंबू और बाड़े को साफ़ करना जरूरी नहीं समझा था। सुरजा यह देख ही रहा था कि एकाएक दयाराम उसके सामने आ खड़ा हुआ।

सुरजा जब हर्ष से गदगद कुछ बोल न सका तब दयाराम ने अचरज भरे स्वर में पूछा -'तुम ! यहाँ कैसे आ पहुँचे ?'

सुरजा तो दयाराम को देखकर जैसे सुध-बुध ही खो बैठा। "तुम दयाराम हो न !" उसने खुशी से डूबे स्वर में कहा, "मैंने तुम्हें ढूँढ़ने में कितनी तकलीफ़ उठाई ! तुम नहीं जानते, चौकी वाले तुम्हारे साथी बहुत चिंतित हैं।"

"पर तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?" दयाराम ने प्रश्न किया।

"यह न पूछो" सुरजा बोला, "बहुत लंबी कहानी है और अभी इतना समय नहीं कि विस्तार में तुम्हें सुनाऊँ।"

सभी कैदियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

सुरजा बोला, "अभी तो सिर्फ यह बताओ कि तुम्हें छुडाने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ ?".

दयाराम ने पलटकर अपने सभी साथी कैदियों की ओर देखा। उसका चेहरा उदास हो गया। कुछ देर बाद उसने भारी स्वर में कहा,--"सुरजा मेरे मित्र ! यहाँ मेरी तरह ही ये सभी कैदी हैं। इनके बीच से मैं अकेला जाऊँ यह बहुत बुरी बात होगी और फिर, यहाँ से निकल भागना बेहद मुश्किल है। तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो यहाँ तक सही सलामत आ गए।"

सुरजा ने चाहा कि वह दयाराम को बताए कि इस यात्रा में वह कई बार मौत के मुँह से बचा है। पर उसने अपनी बहादुरी का बखान करना ठीक नहीं समझा। इसलिए वह चुप रहा।

दयाराम वैसे ही उदास स्वर में कहे जा रहा था, "मेरे मित्र। इतने साथिया को छोड़कर स्वयं मौत के मुँह से बचना कितनी बुज़दिली और नीचता होगी, तुम जान सकते हो ?"

"तो फिर तुम लोग कोई ऐसी तरकीब मुझे बताओ कि सभी की जान बच सके और सभी यहाँ से निकल सकें।"

यह नहीं हो सकता, "क्योंकि चीनी पहरेदार हममें से हर कैदी के पीछे परछाईं की तरह लगे हुए है। उनसे बच निकलना कठिन ही नहीं, असंभव है।" दयाराम ने कहा, "हाँ तुम चाहो तो हमें बचाने के बजाय एक ऐसा काम कर सकते हो, जिससे देश का बड़ा हित होगा। पर वह बड़ा कठिन काम है और तुम्हें काफी हिम्मत रखनी होगी।"

"मै हर उस काम के लिए तैयार हूँ, जिससे देश का लाभ होता हो।" सुरजा ने छाती फुलाकर कहा, "तुम बताओ, मैं जान की बाजी लगाकर भी उसे पूरा करूँगा।"

सुरजा की बात से दयाराम के मुरझाए चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। उसने उसकी पीठ ठोंकी और कहा, "मुझे तुम पर भरोसा है, मेरे छोटे सिपाही। तुम मुझे बचाने के लिए मौत के मुँह तक आने में नहीं हिचकिचाए हो, तुम जरूर वह काम कर सकोगे।"

सुरजा का साहस बढ़ा। उसने काम सुनने के लिए उतावली प्रकट की, "मुझे जल्दी वह काम बताओ, ताकि मैं उसे पूरा कर अपने देश की सेवा कर सकूँ।"

दयाराम बोला, "ये चीनी फौजी हजारों की संख्या में हैं। जल्दी ही माँगचिंग पर हमला करने वाले हैं। अपनी चौकियों पर ये सिपाही बहुत कम हैं और वहाँ रसद भी कम ही है।"

"तो क्या मुझे वापस जाकर चौकियों पर इस खतरे की खबर देनी है?" सुरजा बहुत उतावलेपन के साथ बीच में ही बोला।"

"नहीं।" दयाराम बोला,—" जब तक तुम वापस पहुँचोगे, तब तक तो हमला हो भी जाएगा। और मान लो, तुम वापस चले भी गए और चौकियों से इन फौजों का मुकाबला हुआ भी, तब भी क्या इन टिड्डी-दलों से जीतना संभव होगा?"

"तुम सच कहते हो," सुरजा ने बड़ी ढीली आवाज़ में उत्तर दिया, "चीनी सिपाही बहुत अधिक हैं और हमारे सिपाही बहुत कम हैं।"

"बेशक !" दयाराम फिर बोला, "इसलिए तुम ऐसा करो कि एक खतरनाक काम करके उस खतरे को यहीं समाप्त कर दो।"

"कैसे ?" सुरजा ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम्हें इस बाड़े से निकलकर पहले चीनियों के हाथों स्वयं को कैद कराना होगा।"

सुरजा ने अचरज से दयाराम के मुँह की ओर देखा।

तुम्हें कैद करके जब वे चीनी सिपाही तुम्हें कमांडर के सामने ले जाएं तब डरना नहीं। वह चीनी कमांडर तुमको डाँट-फटकार कर हिन्दुस्तानी चौकियों के बारे में पूछेगा। वह यह भी कहेगा कि तुम खुद उसके किसी सिपाही के साथ जाकर चौकियों का रास्ता बता दो।"

"पर मुझे तो अब खुद भी अपने गाँव का रास्ता नहीं मालूम।"

"नहीं, तुम्हें उससे यही कहना होगा कि तुम्हें रास्ता मालूम है," दयाराम बोला—"तुम्हारे यह कहने पर वह दो-एक चीनी सिपाही तुम्हारे साथ कर देगा और तुम्हें उनके साथ गाँव की ओर रास्ता बताते हुए जाना पड़ेगा।"

"मैंने कहा न कि मुझे अब गाँव का रास्ता याद नहीं है।"

"हाँ-हाँ, मै जानता हूँ कि तुम्हें गाँव का रास्ता याद नहीं है। तुम्हें उन सिपाहियों को उस रास्ते ले जाने की आवश्यकता ही नहीं है।" दयाराम समझाते हुए बोला,—"तुम्हें तो उन चीनी सिपाहियों को तंबुओं की तरफ करीब एक कि०मी० दूर ले जाकर भटका देना है। फिर फुरती से वह बड़ा कैंप ढूँढ़ना है जिस पर **भगवान गौतम बुद्ध की दो तस्वीरें** बनी हुई है। जब तंबू मिल जाए तब फौरन अपनी इस लालटेन का तेल उस तंबू के कपड़े पर फेंककर उसमें आग लगा देना।"

"इससे क्या होगा ?" सुरजा ने सवाल किया।

इससे यह होगा कि चीनियों का वह सारा गोला-बारूद क्षण भर में जल जाएगा, जिसके सहारे वे माँगचिंग गाँव पर हमला करने वाले हैं।" दयाराम ने रहस्य बताया और सुरजा हर्ष से नाच उठा। "पर इस काम में जान का खतरा है", दयाराम ने आगे कहा,—

"यदि तुम जल्दी ही वहाँ से भाग न सके तो संभव है कि बारूद के उस विस्फोट के साथ तुम्हारे चिथड़े उड़ जाएँ।"

"मुझे इसकी तनिक भी परवाह नहीं है", सुरजा ने साहसपूर्वक उत्तर दिया—"मेरी जान जाने से यदि मेरे देश की धरती और लाखों लोगों का जीवन बच सकता है, तो यह सौदा महँगा नहीं है। मैं तुम्हारा काम ज़रूर करूँगा।"

"बारूद-भंडार के निकट ही तुम्हें कुछ चीनी सिपाही अफ़ीम की पिनक में बैठे मिलेंगे। उन्होंने एक-न-एक अलाव को घेर रखा होगा। अकसर होता यह है कि ये सिपाही नशे की नींद से लाचार होकर सो जाते हैं। "उस अलाव से जलती हुई लकड़ी उठाकर तुम आसानी से उस तंबू में आग लगा सकोगे।" दयाराम ने उसे समझाया।

"मेरे पास दियासलाई है," सुरजा बोला।

"तब ठीक है," दयाराम ने कहा।

सुरजा ने सारी बातें समझ ली थीं। वह उठ खड़ा हुआ, "अब मैं जाऊँ ?"

दयाराम 'हाँ' कहने ही वाला था कि रुक गया, "ठहरो !" उसने फुसफुसाकर कहा—"कोई आ रहा है।"

पल भर में सुरजा के आस-पास एकत्र भीड़ छँट गई। सुरजा को सबने एक कोने में दुबका कर बैठा दिया। एक मोटा तिब्बती उसके आगे कुछ इस तरह खड़ा हो गया था कि सुरजा उसके मोटे लबादे में बिल्कुल छिप गया।

कुछ ही क्षणों में दो चीनी सैनिकों ने तंबू में प्रवेश किया। उन्होंने कैदियों से बातचीत तो नहीं की। हाँ, उन्हें घूरकर देखा और वापस हो लिए।

उनके जाने के बाद सुरजा को पुनः निकाला गया। कुछ देर ठहरने के बाद सुरजा कैदखाने से इधर-उधर देखता हुआ सावधानी से निकल गया।

दयाराम ने सुरजा को सलाह दी थी कि वह स्वयं को गिरफ्तार करवा ले। सुरजा ने सबके सामने उसका विरोध करना ठीक नहीं समझा था। लेकिन जो काम उसे करना था, वह तो बिना गिरफ्तार हुए भी किया जा सकता था।

कुछ देर सुरजा यही सोच-विचार करता रहा। सुबह होने लगी थी। सुरजा

जल्दी ही अपना काम पूरा कर लेना चाहता था, ताकि उसे दूसरे दिन की रात तक प्रतीक्षा न करनी पड़े।

उसने निश्चय किया कि वह स्वयं को गिरफ्तार कराए बिना बारूद और रसद के भंडार में आग लगा देगा। उसने पहाड़ियों के पीछे-पीछे कैंपों का चक्कर लगाना प्रारम्भ किया। इस दौरान उसने अनेक तंबुओं के सामने चीनी सिपाहियों को आग के चारों तरफ बैठे देखा। अब सुरजा एक ऐसी जगह पहुँच गया था, जहाँ सब ओर तंबू ही तंबू नज़र आते थे। पर उसकी आँखें उस बड़े भंडारघर की तलाश कर रही थीं, जिस पर भगवान बुद्ध की दो तस्वीरें बनी हुई हों। सुरजा देर तक तलाश करता रहा, पर ऐसा कोई तंबू उसे नहीं दिखा। शायद वह भंडार तंबुओं के बीच में था। लाचार सुरजा ने तंबुओं के बीच प्रवेश करने का निश्चय किया। ऐसा करना बहुत खतरनाक था। फिर भी सुरजा अपने काम के लिए यह खतरा उठाने को तैयार था। वह कभी दौड़ता और कभी रेंगता हुआ एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे तंबू को पार करता। वह सैकड़ों चीनी पहरेदारों की आँखों से बचते हुए आगे घुसता चला गया।

तंबुओं के बीचोंबीच उसे एक विशाल चौकोर तंबू मिला। उस पर गौतम बुद्ध का चित्र बना हुआ था। सफलता ने सुरजा की सारी थकान मिटा दी। उसने तंबू के इधर-उधर सावधानी से दृष्टि दौड़ाई। उसे अब केवल तंबू के उन पहरेदारों की तलाश थी जो दयाराम के कहने के अनुसार अफ़ीम के नशे में पड़े बेसुध सो रहे होंगे। जल्दी ही वे भी उसे दिखाई दे गए। वे सचमुच सोए पड़े थे।

सुरजा की बाछें खिल गईं। अपनी लालटेन का ढक्कन निकालकर वह तंबू की चौतरफा कनात पर मिट्टी का तेल फैलाने लगा। पर जल्दी ही उसकी खुशी उदासी में बदल गई, क्योंकि लालटेन में इतना कम तेल था कि तंबू के आधे हिस्से में भी पूरा नहीं पड़ा।

सुरजा परेशान-सा खड़ा रह गया। अब क्या करे? यह तो किनारे पर पहुँचकर डूब जाने जैसी बात ही रही थी। तभी उसे पहरेदारों से कुछ दूरी पर ही एक जीप खड़ी दिखाई दी। वह फ़ौरन उसके पास पहुँचा। उसका अनुमान था कि उस फौजी मोटर में पेट्रोल अवश्य होगा। अनुमान ठीक ही निकला। जीप के पिछले हिस्से में बहुत-सा पेट्रोल छोटी-छोटी टंकियों में बंद रखा हुआ था। सुरजा ने फुर्ती से एक टंकी उठाई

और छिपता-सँभलता हुआ वह अपनी जगह लौट आया। टंकी भारी थी, किंतु वह इतने जोश में था कि उसे उसका वजन अनुभव ही नहीं हुआ। उसने जल्दी से टंकी खोल कर बड़े तंबू के चौतरफा कपड़े को पेट्रोल में भिगो दिया और बिना एक क्षण की देर किए उसमें दियासलाई दिखा दी।

बात की बात में सारा तंबू लपटों से भर गया। इससे पूर्व कि बारूदखाना भड़के, सुरजा वहाँ से भाग खड़ा हुआ। वह पहरेदारों की चिंता किए बिना पहाड़ियों की ओर भागा जा रहा था। पीछे से उसके कानों में चीनी तंबुओं में फैली चीख-चिल्लाहट की आवाज आ रही थी। पहाड़ी के पास पहुँचते-पहुँचते सुरजा ने एक बार पलटकर देखा। तंबू से उठती हुई लपटें अब आसमान को छू रही थीं और चीनी कैंपों से सिपाही चीखते-चिल्लाते, जिधर रास्ता मिलता था उधर ही भागे जा रहे थे। तभी सुरजा ने देखा कुछ सिपाही बंदूक तान उसकी ओर दौड़ते आ रहे थे। सुरजा बिजली की सी फुर्ती से दौड़ा और एक पहाड़ी पर चढ़ने लगा। इसी बीच उसने एक भयंकर विस्फोट का स्वर सुना। पीछे मुड़कर देखा। भय से उसकी आँखें फट गईं। अनेक तंबू और चीनी सैनिकों के चिथड़े आसमान में उड़ रहे थे। उसने उस ओर अधिक ध्यान न दिया और चढ़ाई जारी रखी। वह जल्दी-जल्दी चढ़ना चाहता था, पर उसके पैर अब दर्द करने लगे थे। वह हाँफने लगा था और लेटकर आराम करने का उसका मन हो रहा था।

सुरजा पहाड़ी की चोटी पर पहुँच गया था। पर कुछ चीनी सैनिक लगातार उसका पीछा करते आ रहे थे। जल्दी में सुरजा के हाथ से लालटेन छूट गई और लाठी भी दूर जा पड़ी। वह बर्फीली पहाड़ियों पर फिसलन की परवाह किए बिना भागा। एकाएक पहाड़ी से उसका पैर फिसल गया और वह नीचे खाई में लुढ़कता चला गया। नीचे जब वह तलहटी पर लगा, तब उसके एक पैर की हड्डी टूट चुकी थी। हाथ-पैर कई जगह से छिल गए थे और वह जहाँ आ गिरा था, वहाँ से उठना भी उसके लिए असंभव हो गया था।

पहाड़ियों के पीछे अब भी धुँआ आसमान को छू रहा था और चीख पुकार के स्वर आ रहे थे।

सुरजा ने एक गहरी साँस खींची। वह मुस्करा उठा। कष्ट और थकान के कारण उसका सारा शरीर सुन्न होता जा रहा था, मानो उसने अफीम खा ली हो। उसकी आँखें मुँद रही थीं, शायद वह सो जाना चाहता था।

—विमला शर्मा

प्रश्न-अभ्यास

१. इस उपन्यास में कुल कितने पात्र हैं ? सभी के नाम लिखकर प्रमुख पात्र की कोई पाँच विशेषताएँ बताओ।

२. इस उपन्यास में वर्णित घटना कब की है ? उसका संक्षेप में वर्णन करो।

३. सुरजा और दयाराम में कब और कैसे दोस्ती हो गई ?

४. दयाराम एकाएक कैसे गायब हो गया ? सुरजा ने उसे कैसे ढूंढ निकाला ?

५. दयाराम ने सुरजा को कौन-से दो काम बताए ? सुरजा ने कौन-सा काम करना उचित नहीं समझा ?

६. निम्नलिखित में से सुरजा का कौन-सा काम विशेष उल्लेखनीय है ?

(क) पिता की सहायता करते हुए अपनी पढ़ाई जारी रखना।

(ख) अपनी बहन की भली प्रकार देख-रेख करना।

(ग) सैनिक बनकर देश की सेवा करने का संकल्प लेना।

(घ) दयाराम को ढूँढ निकालना।

(ङ) चीनी सैनिकों की आँखों में धूल झोंकना।

(च) चीनियों के बारूद के भंडार को नष्ट कर देना।

७. यह मानकर कि भारतीय खोज दस्ते ने सुरजा को ढूँढ निकाला और उसकी चिकित्सा कराकर भारत सरकार ने उसे ऊँची शिक्षा दिलाई और सेना में भरती कर लिया। इस घटना को आगे बढ़ाओ।